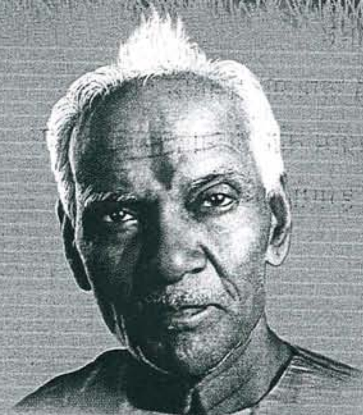

आशा की जानी चाहिएं कि नव-सृजन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मनीषो, समयदानी, धनी आदि प्रतिभावान अपनी-अपनी श्रद्धांजलि लेकर नवयुग के अभिनव सृजन में आगे बढ़ेगें और कहने लायक योगदान देंगे। इक्कीसवीं सदी का उज्ज्वल भविष्य विनिर्मित करने के लिए इस प्रकार का सहयोग आवश्यक है और अनिवार्य भी।

- पं.श्रीराम शर्मा आचार्य

Book Cover- SJ 0074

युगऋषि की वेदना एवं उमंगें जानें तदनुसार कुछ करें

संकलन- सम्पादन
ब्रह्मवर्चस

युगऋषि की वेदना एवं उमंगें जानें
तदनुसार कुछ करें

संकलन-सम्पादन

ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक

वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, टीएमडी,
शांतिकुंज, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

प्रथम आवृत्ति २०११ मूल्य : ००.०० रुपए

हमारी कितनी रातें सिसकते बीती हैं, कितनी बार हम बालकों की तरह बिलख-बिलख कर, फूट-फूट कर रोए हैं। इसे कोई कहाँ जानता है? लोग हमें संत, सिद्ध, ज्ञानी मानते हैं। कोई लेखक, विद्वान, वक्ता, नेता समझते हैं, पर किसने हमारा अन्तःकरण खोलकर पढ़ा, समझा है? कोई उसे देख सका होता, तो उसे मानवीय व्यथा-वेदना की अनुभूतियों की करुण कराह से हाहाकार करती एक उद्विग्न आत्मा भर इन हड्डियों के ढाँचे में बैठी-बिलखती दिखाई पड़ती।

अपने अनन्य आत्मीय प्रज्ञा परिजनों में से प्रत्येक के नाम हमारी यही वसीयत और विरासत है कि हमारे जीवन से कुछ सीखें, कदमों की यथार्थता खोजें, सफलता जाँचे और जिससे जितना बन पड़े अनुकरण का, अनुगमन का प्रयास करें।

– पूज्य गुरुदेव

अनुक्रमणिका

१. युगऋषि की अभिलाषा ०५

२. प्रामाणिक सत्पात्रों की खोज..........................२२

३. युग निर्माण की चुनौती स्वीकारें ३१

४. वेदना समझें, भूल सुधारें ४५

५. कसौटी पर खरे उतरें ५५

६. संगठन का स्वरूप ६१

७. युगऋषि का आश्वासन ७०

८. परिजनों को निर्देश ८३

९. महाकाल की चेतावनी ९३

पूर्व निवेदन

युगऋषि युग निर्माण की ईश्वरीय योजना को मूर्तरूप देने के लिए अवतरित हुए, यह सत्य है; तो यह भी सच है कि उनके साथ आत्मीय जुड़ाव अनुभव करने वाले व्यक्ति भी उसी योजना के अन्तर्गत विशेष रूप से आये या लाये गये। युग ऋषि ने अपनी असाधारण भूमिका निभाई तो परिजनों ने भी बहुत कुछ अनोखा-सराहनीय कार्य कर दिखाया।

हमारे नैष्ठिक प्रयासों से युग ऋषि को जहाँ प्रसन्नता हुई वहीं व्यक्तित्व के विकास के सूत्रों के प्रति हमारी उपेक्षा ने उन्हें वेदना भी पहुँचाई।

अपनी भूमिकाएँ निभाने की उनकी रीति-नीति तथा हम परिजनों की रीति-नीति में एक मौलिक भेद रह गया। उन्होंने हर भूमिका के बाद अगली भूमिका के लिए अपने व्यक्तित्व को और अधिक प्रखर और परिष्कृत बनाया, जब कि हममें से अधिकांश पिछली भूमिका की सफलता पर इतराते-इठलाते रहे। कार्य के बढ़ते स्तर, जिम्मेदारी की अगली कक्षा के अनुरूप स्वयं को परिष्कृत-प्रखर बनाने की जगह हम पूर्व सफलताओं का हवाला देकर ही आगे के मोर्चे फतह करने की कोशिश करते रहे। हमारी इसी भूल के कारण युग ऋषि को भी बार-बार वेदना झेलनी पड़ी और हमें भी मेहनत के अनुरूप लाभ नहीं मिल पाये।

ऐसी भूलें उनके शरीर रहते भी हुईं और उनके शरीर छोड़कर सूक्ष्म एवं कारण सत्ता में प्रवेश के बाद भी होती रही हैं। भूलें-तो भूल हैं। उनसे हानि तो होती ही है। सावधानी के अभाव में वे होती हैं, तो सावधानी बरतकर उन्हें ठीक भी किया जा सकता है। हर अभिभावक -प्रत्येक मार्गदर्शक यही चाहता है कि उनके बच्चों-अनुयायियों की भूलें जल्द ठीक हों। इसके लिए वे परिजनों से नादानी से होने वाली भूलों के कारण उभरी अपनी वेदना तथा भूलों के सुधार तथा परिजनों के विकास के सिद्ध सूत्रों को समय-समय पर व्यक्त करते रहे हैं। इस पुस्तक में उनके द्वारा व्यक्त ऐसे ही आलेखों के महत्त्वपूर्ण अंशों को संकलित सम्पादित किया गया है।

कहते हैं कि घटनाओं के स्वरूप भले ही बदलते रहें, लेकिन इतिहास स्वयं को दुहराता रहता है। समय काफी आगे बढ़ गया, मिशन काफी विकसित हो गया; किन्तु साधकों से होने वाली भूलों के पीछे एक ही तथ्य झलकता रहता है, वह है समर्थ मार्गदर्शक द्वारा निर्देशित सूत्रों के प्रति बरती गई असावधानी। मनुष्य अपने पूर्व पुरुषों के अनुभवों से सीख-सीख कर ही उन्नति के पथ पर बढ़ता रहता है। इसलिए युग साधकों, प्रज्ञापरिजनों को पूर्व समय की घटनाओं से सीख कर अपने प्रयासों को अधिक कारगर बनाने के प्रयास करने चाहिए। इस पुस्तिका का अध्ययन करने वालों को यह दृष्टि अवश्य मिल सकती है कि जिन कारणों से युग ऋषि को वेदना हुई उनसे बचते रहें, तथा जिन प्रसंगों से उनकी उमंगे बढ़ती हैं उन्हें जीवन में पर्याप्त स्थान दें। इसी के साथ सृजन मार्ग में आने वाली बाधाओं से बचते हुए, समर्थ सत्ता के संरक्षण में उच्चतर लक्ष्यों तक बिना डगमगाये, तेजी से बढ़ते रहने का विश्वास और कौशल भी विकसित होता रह सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में सन् १९६२ से लेकर ९० तक की अखण्ड ज्योति के आलेखों के अंश संदर्भ सहित संकलित हैं। कब, किस प्रसंग में विचार व्यक्त किए गये हैं, यह ध्यान रहे, तो बात अधिक स्पष्टता से समझ में आयेगी। अस्तु निम्न प्रसंगों को ध्यान में रखकर पढ़ना उपयोगी रहेगा।

▲ सन् ६० से ६१ के हिमालय प्रवास के बाद युग ऋषि ने युग निर्माण योजना का उद्घोष किया था।

▲ उस समय बड़ी संख्या में परिजन केवल गायत्री उपासना के कर्मकाण्डों में ही रमे रहकर, उनके क्रांतिदर्शी विचारों के अध्ययन की उपेक्षा करते थे, तब उन्होंने परिजनों का ध्यान इस ओर खींचा कि गायत्री उपासना के कर्मकाण्ड तक ही सीमित न रहें उनके विचारों का भी अध्ययन करें।

▲ सन् ६५ के आस-पास उन्होंने पत्रिकाओं और साहित्य के पढ़ाकुओं में से साधकों सहयोगियों को छाँटने के लिए छटनी अभियान चलाया था। वे बार-बार यह विचार व्यक्त करते रहे कि हम पुस्तक के विक्रेता नहीं है, जो केवल विक्रय से खुश हो जायें। विचारों की सार्थकता तभी है, जब वे जीवन को प्रभावित करें।

▲ सन् ७०-७१ में मथुरा से विदा लेने के प्रसंग में उनके द्वारा भविष्य की अपनी भूमिका और परिजनों के दायित्वों का खुलासा करने के प्रयास किए गये।

▲ सन् ७३ के बाद मिशन के उभरते नये स्वरूप को लक्ष्य करके स्वाभाविक रूप से होने वाली चूकों से बचने तथा आवश्यकताओं के अनुरूप कुशलता अर्जित करने की अपील की गई।

▲ सन् ८०-८१ में शक्तिपीठों की स्थापना क्रम में आध्यात्मिक ऊर्जा संचार के लिए संगठित प्रयासों पर प्रकाश डाला।

▲ सन् ८४-८६ के बीच सूक्ष्मीकरण साधना के संदर्भ में रहस्य प्रकट किए गये।

▲ सन् ८८ से ९० तक काया से ऊपर उठकर अधिक समर्थता से कार्य करने की अपनी रीति-नीति स्पष्ट की। इन्हीं संदर्भों में अपनी वेदना और उमंगों को व्यक्त करते रहे।

हमें अपने जीवन क्रम और प्रयासों को उनकी सन्तुष्टि के स्तर तक ले चलने के प्रयास तो पूरी निष्ठा से करने ही चाहिए। हम युग जन्मशताब्दी बड़े उत्साह के साथ मना रहे हैं। इस समारोह का एक मात्र उद्देश्य यह है कि हम कुछ ऐसा नया करें, जिससे उन्हें प्रसन्नता हो।

यों देखा जाय तो यह चाह तो हर सपूत-हर सच्चे साधक की रहती है कि वह अपने अभिभावक मार्गदर्शक को अधिक से अधिक प्रसन्न रखें। किन्तु चाहते हुए भी वैसा हो नहीं पाता। उसका मुख्य कारण एक ही होता है कि हम जाने-अनजाने मार्गदर्शक के बताये-सुझाये जीवन सूत्रों की उपेक्षा करने लगते हैं। इस पुस्तिका के अध्ययन से इस दुःखदायी भूल को सुधारने की दृष्टि और प्रेरणा पाई जा सकती है। हमें अपने प्रयासों को सार्थक बनाने के लिए ऐसा अवश्य करना चाहिए।

– प्रकाशक

प्रेम तत्त्व के संवर्धन की साधना गुरु भक्ति से आरंभ होकर ईश्वर भक्ति तक जा पहुँची। हमें इस प्रसंग में इतने अधिक आनन्द उल्लास का अनुभव होता रहा है कि उसके आगे संसार का बड़े से बड़ा सुख भी तुच्छ लग सके।

मुनष्य जिसे प्यार करता है, उसके उत्कर्ष एवं सुख के लिए बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान करने को तैयार रहता है। अपने शरीर, मन, अंतःकरण एवं भौतिक साधनों का अधिकाधिक भाग समाज और संस्कृति की सेवा में लगने से रुका नहीं जाता। जितना भी कुछ पास दीखता है, उसे अपने प्रिय आदर्शों के लिए लुटा डालने की हूक उठती है कि कोई भी सांसारिक प्रलोभन उसे रोक सकने में समर्थ नहीं होता।

परिजन हमारे लिए भगवान की ही प्रतिकृति है और उनसे अधिकाधिक गहरा प्रेम प्रसंग बनाए रखने की उत्कंठा उमड़ती रहती है। आगे जिस विशिष्टतम साधना के लिए हमें अविज्ञात आवरण में जाना है, उसका उद्देश्य नवनिर्माण के अनुरूप व्यक्तित्वों एवं परिस्थितियों का सृजन करना ही है।

- पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

१. युगऋषि की अभिलाषा

१. चोखे व्यक्तियों की तलाश—हमारी परंपरा पूजा उपासना की अवश्य है पर व्यक्तिवाद की नहीं। अध्यात्म को हमने सदा उदारता, सेवा और परमार्थ की कसौटी से कसा है और स्वार्थी को खोटा एवं परमार्थी को खरा कहा है। अखण्ड ज्योति परिवार में दोनों ही प्रकार के खरे-खोटे लोग मौजूद हैं। अब इनमें से उन खरे लोगों की तलाश की जा रही है जो हमारे हाथ में लगी हुए मशाल को जलाए रखने में अपना हाथ लगा सकें, हमारे कंधे पर लदे हुए बोझ को हलका करने में अपना कंधा लगा सकें। ऐसे ही लोग हमारे प्रतिनिधि या उत्तराधिकारी होंगे। इस छाँट में जो लोग आ जाएँगे उनसे हम आशा लगाए रहेंगे कि मिशन का प्रकाश एवं प्रवाह आगे बढ़ाते रहने में उनका श्रम एवं स्नेह अनवरत रूप से मिलता रहेगा। हमारी आशा के केन्द्र यही लोग हो सकते हैं।

और उन्हें ही हमारा सच्चा वात्सल्य भी मिल सकता है। बातों से नहीं काम से ही किसी की निष्ठा परखी जाती है और जो निष्ठावान् हैं उनको दूसरों का हृदय जीतने में सफलता मिलती है। हमारे लिए भी हमारे निष्ठावान् परिजन ही प्राणप्रिय हो सकते हैं।

-अखण्ड ज्योति, दिसंबर १९६४, पृष्ठ ५१

२.आन्तरिक निकटता चाहिए—दूसरों की तरह हमारे भी दो शरीर हैं, एक हाड़-मांस का, दूसरा विचारणा एवं भावना का। हाड़-मांस से परिचय रखने वाले करोड़ों हैं। लाखों ऐसे भी हैं जिन्हें किसी प्रयोजन के लिए हमारे साथ कभी सम्पर्क करना पड़ा है। अपनी उपार्जित तपश्चर्या को हम निरन्तर एक सहृदय व्यक्ति की तरह बाँटते रहते हैं। विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों एवं उलझनों में उलझे हुए व्यक्ति किसी दलदल में से निकलने के लिए हमारी सहायता प्राप्त करने आते रहते

हैं। अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनका भार हलका करने में कोई कंजूसी नहीं करते। इस संदर्भ में अनेक व्यक्ति हमारे साथ संपर्क बनाते और प्रयोजन पूरा होने पर उसे समाप्त कर देते हैं। कितने ही व्यक्ति साहित्य से प्रभावित होकर पूछताछ एवं शंका समाधान करने के लिए, कितने ही आध्यात्मिक साधनाओं के गूढ़ रहस्य जानने के लिए, कई अन्यान्य प्रयोजनों से आते हैं। इनकी सामयिक सेवा कर देने से हमारा कर्त्तव्य पूरा हो जाता है। उनके बारे में न हम अधिक सोचते हैं और न उनकी कोई शिकायत या चिंता करते हैं।

हमारे मन में भावनाएँ उनके लिए उफनती हैं जिनकी पहुँच हमारे अंत:करण एवं भावना स्तर तक है। भावना शरीर ही वास्तविक शरीर होता है। हम शरीर से जो कुछ हैं, भावना की दृष्टि से कहीं अधिक हैं। हम शरीर से किसी की जो भलाई कर सकते हैं उसकी अपेक्षा अपनी भावनाओं, विचारणाओं का अनुदान देकर कहीं अधिक लाभ पहुँचाते हैं। पर अनुदान ग्रहण वे ही कर पाते हैं जो भावनात्मक दृष्टि से हमारे समीप हैं। जिन्हें हमारे विचारों से प्रेम है, जिन्हें हमारी विचारणा, भावना एवं अंत:प्रेरणा का स्पर्श करने में अभिरुचि है उन्हीं के बारे में यह कहना चाहिए कि वे तत्त्वत: हमारे निकटवर्ती एवं स्वजन संबंधी हैं। उन्हीं के बारे में हमें कुछ विशेष सोचना है, उन्हीं के लिए हमें कुछ विशेष करना है।

–अखण्ड ज्योति, जुलाई १९६६, पृष्ठ ४२

३. उद्देश्य पूर्ति में सहायक बनें—आपत्तिग्रस्त व्यक्तियों की सहायता करना भी धर्म है। फिर जिसने कोई कुटुंब बनाया हो उस कुलपति का उत्तरदायित्व तो और भी अधिक है। गायत्री परिवार के परिजनों की भौतिक एवं आत्मिक कठिनाइयों के समाधान में हम अपनी तुच्छ सामर्थ्य का पूरा-पूरा उपयोग करते रहे। कहने वालों का कहना है कि इससे लाखों व्यक्तियों को असाधारण लाभ पहुँचा होगा। पहुँचा होगा—पर हमें उससे कुछ अधिक संतोष नहीं हुआ। हम चाहते थे कि वह माला जपने वाले लोग—हमारे शरीर से नहीं विचारों से प्रेम

करें, स्वाध्यायशील बनें, मनन चिंतन करें, अपने भावनात्मक स्तर को ऊँचा उठावें और उत्कृष्ट मानव निर्माण करके भारतीय समाज को देव समाज के रूप में परिणत करने के हमारे उद्देश्य को पूरा करें। पर वैसा न हो सका। अधिकांश लोग चमत्कारवादी निकले। वे न तो आत्म निर्माण पर विश्वास कर सके और न लोक निर्माण में। आध्यात्मिक व्यक्तियों का जो उत्तरदायित्व होता है उसे अनुभव न कर सके। हम हर परिजन से बार-बार, हर बार अपना प्रयोजन कहते रहे, पर उसे बहुत कम लोगों ने सुना, समझा। मंत्र का जादू देखने के लिए वे लालायित रहे, हम उनमें से काम के आदमी देखते रहे। इस खींचतान को बहुत दिन देख लिया तो हमें निराशा भी उपजी और झल्लाहट भी हुई। मनोकामना पूर्ण करने का जंजाल अपने या गायत्री माता के गले बाँधना हमारा उद्देश्य कदापि न था। उपासना की वैज्ञानिक विधि व्यवस्था अपनाकर आत्मोन्नति के पथ पर क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ते चले जाना यही हमें अपने स्वजन परिजनों से आशा थी, पर वे उस कठिन दीखने वाले काम को झंझट समझकर कतराते रहे। ऐसे लोगों से हमारा क्या प्रयोजन पूरा होता?

–अखण्ड ज्योति, अक्टूबर १९६६, पृष्ठ ४५,४६

४. अभिलाषा इतनी भर है कि अपने परिवार से जो आशाएँ रखी गई हैं, उन्हें कल्पना मात्र सिद्ध न होना पड़े। अखण्ड ज्योति परिजन अपना उत्साह खो न बैठें और जब त्याग, बलिदान की घड़ी आए, तब अपने को खोटा सिक्का सिद्ध न करने लगें। मनुष्य की महानता उसकी उन सत्प्रवत्तियों को चरितार्थ करने में है, जिनसे दूसरों को प्रकाश मिले। जिसमें ऐसा कुछ नहीं, जो उदरपूर्ति और प्रजनन प्रक्रियाओं तक सीमाबद्ध है, उसे नर-पशु ही कहा जा सकता है। हम नहीं चाहते कि हमारे बड़ी आशाओं के साथ सँजोए हुए सपनों की प्रतिमूर्ति परिजन उसी स्तर के चित्र हों, जिसका कि घर-घर में कूड़ा-करकट भरा पड़ा है।

इस महत्त्वपूर्ण वेला में जो अपने कर्त्तव्यों का स्मरण रख सकें और

जो उसके लिए वासना और तृष्णा को एक सीमा में नियंत्रित रखकर कुछ अवसर, युग की पुकार, ईश्वरीय पुकार को सुनने, समझने और तदनुसार आचरण करने में लगा सकें, वे ही हमारी आशाओं के केंद्र हो सकते हैं। उन साथी-सहचरों के संग हम आगे बढ़ते और निर्धारित मोर्चों पर लड़ते हुए आगे बढ़ेंगे।

-अखण्ड ज्योति, दिसंबर १९६८, पृष्ठ ६३

५. मजबूत आधारशिला रखना है—युग निर्माण योजना की मजबूत आधारशिला रखे जाने का अपना मन है। यह निश्चित है कि निकट भविष्य में ही एक अभिनव संसार का सृजन होने जा रहा है। उसकी प्रसव पीड़ा में अगले दस वर्ष अत्यधिक अनाचार, उत्पीड़न, दैवीय कोप, विनाश और क्लेश, कलह से भरे बीतने हैं। दुष्प्रवृत्तियों का परिपाक क्या होता है, इसका दंड जब भरपूर मिल लेगा, तब आदमी बदलेगा। यह कार्य महाकाल करने जा रहा है। हमारे हिस्से में नवयुग की आस्थाओं और प्रक्रियाओं को अपना सकने योग्य जनमानस तैयार करना है। लोगों को यह बताना है कि अगले दिनों संसार का एक राज्य, एक धर्म, एक अध्यात्म, एक समाज, एक संस्कृति, एक कानून, एक आचरण, एक भाषा और एक दृष्टिकोण बनने जा रहा है, इसलिए जाति, भाषा, देश, सम्प्रदाय आदि की संकीर्णताएँ छोड़ें और विश्वमानव की एकता की, वसुधैव कुटुंबकम् की भावना स्वीकार करने के लिए अपनी मनोभूमि बनाएँ।

लोगों को समझाना है कि पुराने से सार भाग लेकर विकृत्तियों को तिलांजलि दे दें। लोकमानस में विवेक जाग्रत् करना है और समझाना है कि पूर्व मान्यताओं का मोह छोड़कर जो उचित उपयुक्त है केवल उसे ही स्वीकार शिरोधार्य करने का साहस करें। सर्वसाधारण को यह विश्वास कराना है कि धन की महत्ता का युग अब समाप्त हो चला, अगले दिनों व्यक्तिगत संपदाएँ न रहेंगी, धन पर समाज का स्वामित्व होगा। लोग अपने श्रम एवं अधिकार के अनुरूप सीमित साधन ले सकेंगे। दौलत और अमीरी दोनों ही संसार से विदा हो जाएँगी। इसलिए धन के

लालची बेटे-पोतों के लिए जोड़ने-जाड़ने वाले कंजूस अपनी मूर्खता को समझें और समय रहते स्वल्प संतोषी बनने एवं शक्तियों को संचय उपयोग से बचाकर लोकमंगल की दिशाओं में लगाने की आदत डालें। ऐसी-ऐसी बहुत बातें लोगों के गले उतारनी हैं, जो आज अनर्गल जैसी लगती हैं।

संसार बहुत बड़ा है, कार्य अति व्यापक है, हमारे साधन सीमित हैं। सोचते हैं एक मजबूत प्रक्रिया ऐसी चल पड़े जो अपने पहिए पर लुढ़कती हुई उपरोक्त महान लक्ष्य को सीमित समय में ठीक तरह पूरा कर सके।

-अखण्ड ज्योति, मार्च १९६९, पृष्ठ ५९, ६०

६. सुसंस्कारी आत्माएँ चेतें—अखण्ड ज्योति परिवार के परिजनों में अधिकांश बहुत सुसंस्कारी आत्माएँ हैं। उन्हें प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़ा और परिश्रमपूर्वक एक टोकरी में संग्रह किया गया है। वही हमारा परिवार है। इनसे नव निर्माण की भूमिका संपादन करने की, अग्रिम मोर्चा सँभालने की हमारी आशा अकारण नहीं है। उसके पीछे एक तथ्य है कि उत्कृष्ट आत्माएँ कैसे ही मलीन आवरण में क्यों न फँस जाएँ, समय आने पर वे अपना स्वरूप और कर्त्तव्य समझ लेती हैं और दैवी प्रेरणा एवं संदेश को पहचानकर सामयिक कर्त्तव्यों की पूर्ति में विलंब नहीं करतीं। फायर ब्रिगेड वाले वैसे महीनों पड़े सोते रहें पर जब कहीं आग लगने की सूचना मिलती है, तो उनकी तत्परता देखने को ही मिलती है। अपने परिवार को भी यही सब करना है।

घंटों अँगड़ाई लेते रहने में वक्त की बरबादी होती है, सोने का समय चला गया। जगना-उठना पड़ेगा ही। फिर व्यर्थ करवटें बदलते रहने और अँगड़ाई मात्र लेते रहने, समय गँवाते रहने से क्या लाभ? जब जग ही गए तो उठ खड़ा होना ही उचित है। जो काम प्रतीक्षा कर रहे हैं उन्हें समय पर निपटा लेने में ही खूबसूरती और प्रशंसा है। रोते-झींकते, देर-सवेर में जब करना ही पड़ेगा, तो आत्मग्लानि और लोकनिंदा का

कलंक ओढ़ने की क्या आवश्यकता? असामयिक आलस्य प्रमाद को छोड़ ही क्यों न दिया जाए?

–अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६९, पृष्ठ ३

७. श्रद्धा है, तो सक्रिय हों—हमारी इन दिनों अभिलाषा यह है कि अपने स्वजन-परिजनों को नव निर्माण के लिए कुछ करने के लिए कहते-सुनते रहने का अभ्यस्त मात्र न बना दें, वरन कुछ तो करने के लिए उनमें सक्रियता पैदा करें। थोड़े कदम तो उन्हें चलते-चलाते अपनी आँखों से देख लें। हमने अपना सारा जीवन जिस मिशन के लिए तिल-तिल जला दिया, जिसके लिए हम आजीवन प्रकाश प्रेरणा देते रहे उसका कुछ तो सक्रिय स्वरूप दिखाई देना ही चाहिए। हमारे प्रति आस्था और श्रद्धा व्यक्त करने वाले क्या हमारे अनुरोध को भी अपना सकते हैं? क्या हमारे पद-चिह्नों पर कुछ दूर चल सकते हैं? देखा यह भी जाना चाहिए। ताकि हम देख सकें कि हम सच्चे साथियों के रूप में परिवार का सृजन करते रहें अथवा शेखचिल्ली जैसी कल्पना के महल गढ़ते रहे? इस परख में वस्तुस्थिति सामने आ जाएगी और हम अपने परिवार के साथ जोड़े हुए प्रश्नों की यथार्थता, निरर्थकता के संबंध में किसी सुरक्षित निष्कर्ष पर पहुँच जाएँगे।

–अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६९, पृष्ठ ९

८. काया से नहीं, प्राणों से प्यार करें— जो हमें प्यार करता हो, उसे हमारे मिशन से भी प्यार करना चाहिए। जो हमारे मिशन की उपेक्षा, तिरस्कार करता है लगता है वह हमें ही उपेक्षित-तिरस्कृत कर रहा है। व्यक्तिगत रूप से कोई हमारी कितनी ही उपेक्षा करे, पर यदि हमारे मिशन के प्रति श्रद्धावान् है, उसके लिए कुछ करता, सोचता है तो लगता है मानो हमारे ऊपर अमृत बिखेर रहा है और चंदन लेप रहा है। किंतु यदि केवल हमारे व्यक्तित्त्व के प्रति ही श्रद्धा है, शरीर से ही मोह है, उसी की प्रशस्ति पूजा की जाती है और मिशन की बात उठाकर ताक पर रख दी जाती है तो लगता है हमारे

प्राण का तिरस्कार करते हुए केवल शरीर पर पंखा ढुलाया जा रहा हो।

–अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६९, पृष्ठ ९, १०

९. ज्ञान की मशाल का प्रयोजन—जनमानस का भावनात्मक नवनिर्माण करने के लिए जिस विचारक्रांति की मशाल इस ज्ञानयज्ञ के अंतर्गत जल रही है, उसके प्रकाश में अपने देश और समाज का आशाजनक उत्कर्ष सुनिश्चित है। स्वतंत्र चिंतन के अभाव ने हमें मूढ़ता और रूढ़िवादिता के गर्त में गिरा दिया। तर्क का परित्याग कर हम भेड़ियाधसान-अंधविश्वास के दलदल में फँसते चले गए। विवेक छोड़ा तो उचित-अनुचित का ज्ञान ही न रहा। गुण-दोष विवेचन की, नीर-क्षीर विश्लेषण की प्रज्ञा नष्ट हो जाए तो फिर अँधेरे में ही भटकना पड़ेगा।

हम ऐसी ही दुर्दशाग्रस्त विपन्नता में पिछले दो हजार वर्ष से जकड़ गए हैं। मानसिक दासता ने हमें हर क्षेत्र में दीन-हीन और निराश निरुपाय बनाकर रख दिया है। इस स्थिति को बदले बिना कल्याण का और कोई मार्ग नहीं। मानसिक मूढ़ता में ग्रसित समाज के लिए उद्धार के सभी द्वार बंद रहते हैं। प्रगति का प्रारंभ स्वतंत्र चिंतन से होता है। लाभ में विवेकवान रहते हैं। समृद्धि साहसी के पीछे चलती है। इन्हीं सत्प्रवृत्तियों का जनमानस में बीजारोपण और अभिवर्द्धन करना अपनी विचारक्रांति का एकमात्र उद्देश्य है। ज्ञान की मशाल इसी दृष्टि से प्रज्वलित की गई है।

–अखण्ड ज्योति, सितंबर १९६९, पृष्ठ-५९, ६०

१०. शपथ पूर्वक सृजन यात्रा—अब हम सर्वनाश के किनारे पर बिलकुल आ खड़े हुए हैं। कुमार्ग पर जितने चल लिए उतना ही पर्याप्त है। अगले कुछ ही कदम हमें एक दूसरे का रक्तपान करने वाले भेड़ियों के रूप में बदल देंगे। अनीति और अज्ञान से ओत-प्रोत समाज सामूहिक आत्महत्या कर बैठेगा। अब हमें पीछे लौटना होगा। सामूहिक आत्महत्या हमें अभीष्ट नहीं। नरक की आग में जलते रहना हमें अस्वीकार है। मानवता को निकृष्टता के कलंक से कलंकित बनी न

रहने देंगे। पतन और विनाश हमारा लक्ष्य नहीं हो सकता। दुर्बुद्धि एवं दुष्प्रवृत्तियों को सिंहासन पर विराजमान रहने देना सहन न करेंगे। अज्ञान और अविवेक की सत्ता शिरोधार्य किए रहना अब अशक्य है। हम इन परिस्थितियों को बदलेंगे, उन्हें बदलकर ही रहेंगे।

शपथपूर्वक परिवर्तन के पथ पर हम चले हैं और जब तक सामर्थ्य की एक बूँद भी शेष है, तब तक चलते ही रहेंगे। अविवेक को पदच्युत करेंगे। जब तक विवेक को मूर्धन्य न बना लेंगे, तब तक चैन न लेंगे। उत्कृष्टता और आदर्शवादिता की प्रकाश किरणें हर अंत:करण तक पहुँचाएँगे और वासना और तृष्णा के निकृष्ट दलदल से मानवीय चेतना को विमुक्त करके रहेंगे। मानव समाज को सदा के लिए दुर्भाग्यग्रस्त नहीं रखा जा सकता। उसे महान आदर्शों के अनुरूप ढलने और बदलने के लिए बलपूर्वक घसीट ले चलेंगे। पाप और पतन का युग बदला जाना चाहिए। उसे बदल कर रहेंगे।

इसी धरती पर स्वर्ग का अवतरण और इसी मानव प्राणी में देवत्व का उदय हमें अभीष्ट है और इसके लिए भागीरथ तप करेंगे। ज्ञान की गंगा को भूलोक में लाया जाएगा और उसके पुण्य जल में स्नान कराके कोटि-कोटि नर-पशुओं को नर-नारायणों में परिवर्तित किया जाएगा। इसी महान शपथ और व्रत को ज्ञानयज्ञ के रूप में परिवर्तित किया गया है। विचारक्रान्ति की आग में गंदगी का कूड़ा-करकट जलाने के लिए होलिका-दहन जैसा अपना अभियान है। अनीति और अनौचित्य के गलित कुष्ठ से विश्वमानव का शरीर विमुक्त करेंगे। समग्र कायाकल्प का युग परिवर्तन का, लक्ष्य पूरा ही किया जाएगा। ज्ञानयज्ञ की चिनगारियाँ विश्व के कोने-कोने में प्रज्वलित होंगी। विचारक्रांति का ज्योतिर्मय प्रवाह जन-जन के मन को स्पर्श करेगा।

-अखण्ड ज्योति, अक्टूबर १९६९, पृष्ठ ५७, ५८

११. रचनात्मक उमंग जागे—सृजन एक मनोवृत्ति है, जिससे प्रभावित हर व्यक्ति को अपने समय के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए कुछ न कुछ कार्य व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से निरंतर करना होता है।

उसके बिना उसे चैन ही नहीं मिलता। किस परिस्थिति का, किस योग्यता का व्यक्ति, नवनिर्माण के लिए क्या रचनात्मक कार्य करे यह स्थानीय आवश्यकताओं को देखकर ही निर्णय किया जा सकता है। युग निर्माण योजना के 'शत-सूत्री' कार्यक्रमों में इस प्रकार के संकेत विस्तार पूर्वक किए गए हैं। रात्रि पाठशालाएँ, प्रौढ़ पाठशालाएँ, पुस्तकालय, व्यायामशालाएँ, स्वच्छता, श्रमदान, सहकारी संगठन, सुरक्षा, शाक-पुष्प-फल उत्पादन आदि अनेक कार्यों की चर्चा उस संदर्भ में की जा चुकी है।

प्रगति के लिए यह नितांत आवश्यक है कि हर नागरिक के मन में यह दर्द उठता रहे कि विश्व का पिछड़ापन दूर करने के लिए, सुख-शांति की संभावनाएँ बढ़ाने के लिए उसे कुछ न कुछ रचनात्मक कार्य करने चाहिए। यह प्रयत्न कोटि-कोटि हाथों, मस्तिष्कों और श्रम सीकरों से सिंचित होकर इतने व्यापक हो सकते हैं कि सृजन के लिए सरकार का मुँह ताकने और मार्गदर्शन लेने की कोई आवश्यकता ही न रह जाए।

-अखण्ड ज्योति, जून १९७१, पृष्ठ ६०, ६१

१२. विभूतियाँ महाकाल के चरणों में समर्पित करें—परिजनों को अपनी जन्म-जन्मान्तरों की उस उत्कृष्ट सुसंस्कारिता का चिंतन करना चाहिए जिसकी परख से हमने उन्हें अपनी माला में पिरोया है। युग की पुकार, जीवनोद्देश्य की सार्थकता, ईश्वर की इच्छा और इस ऐतिहासिक अवसर की स्थिति, महामानव की भूमिका को ध्यान में रखते हुए कुछ बड़े कदम उठाने की बात सोचनी चाहिए। इस महाअभियान की अनेक दिशाएँ हैं जिन्हें पैसे से, मस्तिष्क से, श्रम सीकरों से सींचा जाना चाहिए। जिसके पास जो विभूतियाँ हैं उन्हें लेकर महाकाल के चरणों में प्रस्तुत होना चाहिए।

लोभ, मोह के अज्ञान और अंधकार की तमिस्रा को चीरते हुए हमें आगे बढ़ना चाहिए और अपने पास जो हो उसका न्यूनतम भाग अपने और अपने परिवार के लिए रख कर शेष को विश्व मानव

के चरणों में समर्पित करना चाहिए। नव निर्माण की लाल मशाल में हमने अपने सर्वस्व का तेल टपका कर उसे प्रकाशवान् रखा है। अब परिजनों की जिम्मेदारी है कि वे उसे जलती रखने के लिए हमारी ही तरह अपने अस्तित्व के सार तत्व को टपकाएँ। परिजनों पर यही कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व छोड़कर इस आशा के साथ हम विदा हो रहे हैं कि महानता की दिशा में कदम बढ़ाने की प्रवृत्ति अपने परिजनों में घटेगी नहीं बढ़ेगी ही।

-अखण्ड ज्योति, जून १९७१, पृष्ठ ६१

१३. सच्चे आत्मीय बनें--यदि किसी को हमारा वास्तविक परिचय प्राप्त करना हो तो नवयुग के प्रतीक प्रतिनिधि के रूप में ही हमारे समूचे जीवन का--समूचे व्यक्तित्व का मूल्यांकन करना चाहिए। हमारे रोम-रोम में चेतना के रूप में बसा हुआ भगवान् यह रास रचाए हुए है।

पंद्रह वर्ष की आयु में सारा जीवन जिस भगवान्, जिस सद्गुरु को समर्पित किया था, वह शरीर सत्ता नहीं, वरन युग चेतना की ज्वलंत ज्वाला ही कही जा सकती है। उसके प्रभाव से हम जो कुछ भी सोचते और करते हैं उसे असंदिग्ध रूप से भजन कहा जा सकता है। यह भजन मानवी आदर्शों को पुनर्जीवित करने के विविध प्रयोगों के रूप में समझा जा सकता है। हमारी दैनिक उपासना भी इसी का एक अंग है। उसके माध्यम से हम अपनी सामर्थ्य पर, अंतरात्मा पर प्रखरता की धार रखते हैं, इसलिए उसे साधना भर कहा जाएगा। साध्य तो वह भगवान् है, जिसकी झाँकी स्थूल शरीर में सत्कर्म, सूक्ष्म शरीर में सद्ज्ञान एवं कारण शरीर में सद्भाव के रूप में भासित होती है।

एक वाक्य में कहना हो तो हमारा प्राण स्पंदन और मिशन, एक ही कहा जा सकता है। इस तथ्य के आधार पर जिनकी मिशन की विचारधारा के प्रति जितनी निष्ठा और तत्परता है, उन्हें हम अपने प्राण जीवन का उतना ही घना संबंधी मानते हैं। भले ही वे

व्यक्तिगत रूप से हमारे शरीरगत संपर्क में कभी न आए हों, हमारी आशा भरी दृष्टि उन्हीं पर जा टिकती है।

-अखण्ड ज्योति, जुलाई १९७७, पृष्ठ ५२

१४. युगदूतों की भूमिका निभायें—नवयुग की चेतना घर-घर पहुँचाने और जन-जन को जागृति का संदेश सुनाने का ठीक यही समय है। इन दिनों हमारी भूमिका युगदूतों जैसी होनी चाहिए। इन दिनों हमारे प्रयास संस्कृति का सेतु बाँधने वाले नल-नील जैसे होने चाहिए। खाई कूदने वाले अंगद की तरह, पर्वत उठाने वाले हनुमान की तरह, यदि पुरुषार्थ न जगे तो भी गिद्ध- गिलहरी की तरह अपने तुच्छ को महान के सम्मुख समर्पित कर सकना तो संभव हो ही सकता है। गोवर्धन उठाते समय यदि हमारी लाठी भी सहयोग के लिए न उठी तो भी स्रष्टा का प्रयोजन पूर्णता तक रुकेगा नहीं। पश्चात्ताप का घाटा हमें ही सहना पड़ेगा।

साहसिक शूरवीरों की तरह अब नवयुग के अवतरण में अपनी भागीरथी भूमिका आवश्यक हो गई है। इसके बिना तपती भूमि और जलती आत्माओं को तृप्ति देने वाली गंगा को स्वर्ग से धरती पर उतरने के लिए सहमत न किया जा सकेगा।

-अखण्ड ज्योति, मार्च १९७८, पृष्ठ ६०, ६१

१५. जनमानस का परिष्कार—युग विकृतियों का एक ही कारण है जनमानस में आदर्शों के प्रति अनास्था का बढ़ जाना। इस सड़ी कीचड़ से ही असंख्यों कृमि-कीटक उपजते हैं और समस्याओं तथा विभीषिकाओं के रूप में जन-जन को संत्रस्त करते हैं। उज्ज्वल भविष्य की संरचना का एक ही उपाय है—जनमानस का परिष्कार। चिंतन में उत्कृष्टता का समावेश किया जा सके, दृष्टिकोण में आदर्शवादिता को स्थान मिल सके, तो लोक प्रवाह में सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों का बाहुल्य दीखेगा। ऐसी दशा में युग संकट के कुहासे को दूर होते देर न लगेगी। समस्या दार्शनिक है--आर्थिक, राजनैतिक या सामाजिक नहीं। जन मानस को परिष्कृत किया जा सके तो प्रस्तुत विभीषिकाओं का अस्तित्व

ही समाप्त हो जाएगा। उनसे लड़ने की लंबी-चौड़ी तैयारी करने की आवश्यकता ही न रहेगी।

मनुष्य को ध्वंस से विरत करके सृजन में लागू होने के लिए सहमत किया जा सके तो बड़े पैमाने पर जो खर्चीली योजनाएँ बन रही हैं उनमें से एक की भी आवश्यकता न पड़ेगी। जन-जन के बूँद-बूँद प्रयत्नों से इतना कुछ अनायास ही होने लगेगा जिस पर सैकड़ों पंचवर्षीय सृजन योजनाओं को निछावर किया जा सकेगा। इसके विपरीत जन सहयोग के अभाव में बड़ी से बड़ी खर्चीली योजनाएँ अपंग बनकर रह जाती हैं। हमें पत्तों पर भटकने के स्थान पर जड़ सींचने का प्रयत्न करना चाहिए। जनमानस का परिष्कार ही सामयिक समस्याओं का एकमात्र हल है। उज्ज्वल भविष्य की संरचना का लक्ष्य इस एक ही राजमार्ग पर चलते हुए निश्चित रूप से पूर्ण हो सकता है। ज्ञानयज्ञ का युग अनुष्ठान इसी निमित्त चल रहा है। विचारक्रांति की लाल मशाल का प्रज्वलन इसी विश्वास के साथ हुआ है कि जन-जन के मन-मन में उत्कृष्टता की आस्थाओं का आलोक उत्पन्न किया जा सके।

-अखण्ड ज्योति, फरवरी १९७९, पृष्ठ ५४

१६. जाग्रत् आत्माओं से याचना—ज्ञानयज्ञ के लिए समयदान, यही है प्रज्ञावतार की जाग्रत् आत्माओं से याचना, उसे अनसुनी न किया जाए। प्रस्तुत क्रिया-कलाप पर नए सिरे से विचार किया जाए, उस पर तीखी दृष्टि डाली जाए और लिप्सा में निरत जीवन क्रम में साहसिक कटौती करके उस बचत को युग देवता के चरणों पर अर्पित किया जाए। सोने के लिए सात घंटे, कमाने के लिए आठ घंटे, अन्य कृत्यों के लिए पाँच घंटे लगा देना सांसारिक प्रयोजनों के लिए पर्याप्त होना चाहिए। इनमें २० घंटे लगा देने के उपरांत चार घंटे की ऐसी विशुद्ध बचत हो सकती है जिसे व्यस्त और अभावग्रस्त व्यक्ति भी युग धर्म के निर्वाह के लिए प्रस्तुत कर सकता है। जो पारिवारिक उत्तरदायित्वों से निवृत्त हो चुके हैं, जिन पर कुटुंबियों की जिम्मेदारियाँ सहज ही हलकी हैं, जिनके पास संचित पूँजी के सहारे निर्वाह क्रम चलाते रहने के साधन

हैं, उन्हें तो इस सौभाग्य के सहारे परिपूर्ण समयदान करने की ही बात सोचनी चाहिए। वानप्रस्थों की, परिव्राजकों की, पुण्य परंपरा की अवधारणा है ही ऐसे सौभाग्यशालियों के लिए। जो जिस भी परिस्थिति में हो समयदान की बात सोचे और उस अनुदान को नवजागरण के पुण्य प्रयोजन में अर्पित करे।

प्रतिभा, कुशलता, विशिष्टता से संपन्न कई विभूतिवान व्यक्ति इस स्थिति में होते हैं कि अनिवार्य प्रयोजनों में संलग्न रहने के साथ-साथ ही इतना कुछ कर या करा सकते हैं कि उतने से भी बहुत कुछ बन पड़ना संभव हो सके। उच्च पदासीन, यशस्वी, धनी-मानी अपने प्रभाव का उपयोग करके भी समय की माँग पूरी करने में अपनी विशिष्ट भूमिका निभा सकते हैं। विभूतिवानों का सहयोग भी अनेक बार कर्मवीर समयदानियों जितना ही प्रभावोत्पादक सिद्ध हो सकता है।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७९, पृष्ठ ५६

१७. लोक सेवा इन दिनों क्या होनी चाहिए ?—लोकसेवा इन दिनों क्या होनी चाहिए, इसकी जानकारी दूरदर्शी विवेकवानों को समय-समय पर कराई जाती रही है और कहा जाता रहा है कि दुर्मति ही दुर्गति का कारण है। चिंतन का भटकाव ही असंख्य समस्याओं का मूल है। सड़े कीचड़ में से दुर्गंधित कृमि कीटक उपजते हैं और रक्त के विषाक्त होने पर अनेकानेक चर्म रोगों का उद्भव होता है। प्रज्ञा युग के अवतरण के लिए हमें घर-घर युग चेतना का अलख जगाना और जन-जन के मन-मन में युग संदेश का आलोक पहुँचाना है। युग समस्याओं को प्राथमिकता देते हुए हम कुछ समय के लिए धर्मशाला, मंदिर, कूप, तालाब, औषधालय, प्याऊ, सदावर्त आदि ख्याति प्रदान करने वाले निर्माणों से हाथ खींच सकते हैं और सर्वप्रथम, सर्वोत्तम एवं सामयिक प्रज्ञा प्रसार को अग्रगामी बनाने के लिए प्रयत्नरत हो सकते हैं। इसके लिए जैसे-जैसे लोभ-मोह के बंधन शिथिल होते जाएँ, समय एवं साधन दान को आज की परम आवश्यकता मानते हुए हर परिजन को युगधर्म के निर्वाह में जुट जाना चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, मई १९८५, पृष्ठ ६२

१८. साँचे बनें, सम्पर्क करें—प्रज्ञा परिवार सृजन का संकल्प लेकर चला है। उसके सदस्यों, सैनिकों का स्तर ऊँचा होना चाहिए। ऐसा ऊँचा इतना अनुशासित कि उसके कृर्तृत्व को देखकर अनेक की चेतना जाग पड़े और पीछे चलने वालों की कमी न रहे। बढ़िया साँचों में ही बढ़िया आभूषण, पुर्जे या खिलौने ढलते हैं। यदि साँचे ही आड़े-तिरछे हों तो उनके संपर्क क्षेत्र में आने वाले भी वैसे ही घटिया—वैसे ही फूहड़ होंगे। इसी प्रयास को संपन्न करने के लिए कहा गया है। इसी को उच्चस्तरीय आत्म परिष्कार कहा गया है। यही महाभारत जीतना है। जन-नेतृत्व करने वालों को आग पर भी, कसौटी पर भी खरा उतरना चाहिए। लोभ, मोह और अंहकार पर जितना अंकुश लगाया जा सके लगाना चाहिए। तभी वर्तमान प्रज्ञा परिजनों से यह आशा की जा सकेगी कि वे अपनी प्रतिभा से अपने क्षेत्र को आलोकित कर सकेंगे और सृजन का वातावरण बना सकेंगे।

दूसरा कार्य यह है कि नवयुग के संदेश को और भी व्यापक बनाया जाए। इसके लिए जन-जन से संपर्क साधा जाए। घर-घर अलख जगाया जाए। मिशन की पृष्ठभूमि से अपने समूचे संपर्क क्षेत्र को अवगत कराया जाए। पढ़ाकर भी और सुनाकर भी। इन अवगत होने वालों में से जो भी उत्साहित होते दिखाई पड़ें उन्हें कुछ छोटे-छोटे काम सौंपे जाएँ। भले ही वे जन्मदिन मनाने जैसे अति सुगम और अति साधारण ही क्यों न हों। पर उनमें कुछ श्रम करना, कुछ सोचना और कुछ कहना पड़ता है। तभी वह व्यवस्था जुटती है। ऐसे छोटे आयोजन संपन्न कर लेने पर मनुष्य की झिझक छूटती है, हिम्मत बढ़ती है और वह क्षमता उदय होती है, जिसके माध्यम से नव सृजन प्रयोजन के लिए जिन बड़े-बड़े कार्यों की आवश्यकता है, उन्हें पूरा किया जा सके।

जो कार्य अगले दिनों करने हैं, वे पुल खड़े करने, बाँध बाँधने, बिजली घर तैयार करने जैसे विशालकाय होंगे। इसके लिए इंजीनियर नहीं होंगे, और न ऊँचे वेतन पर उनकी क्षमता को खरीदा जा सकेगा। वे अपने ही रीछ वानरों में से होंगे। समुद्र पर पुल बाँधने जैसे कार्य में नल-

नील जैसे प्रतिभावान भावनाशील ही चाहिए। इसके लिए बुद्ध, गाँधी, विनोबा जैसे चरित्र भी चाहिए और प्रयास भी।

–अखण्ड ज्योति, अगस्त १९८५, पृष्ठ ६५

१९. समर्थ नाविक बनें— हमारी आंतरिक अभिलाषा एक ही है कि जो हमें अपना समझते हैं, जिन्हें हम अपना समझते हैं, वे युग नेतृत्व करें। अपने आपको आदर्शों के राजमार्ग पर चलाएँ और नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक क्षेत्र में प्रगतिशीलता की क्रिया-प्रक्रिया अपनाएँ। समर्थ नाविक की तरह अपनी मजबूत पतवार वाली नाव पर बिठाकर स्वयं पार हों, अन्यान्य असंख्यों को पार लगाएँ, ऊँचा उठाएँ और ऐसा वातावरण बनाएँ जिससे सर्वत्र बसंत-सुषमा बिखरी दृष्टिगोचर हो।

–अखण्ड ज्योति, सितंबर १९८६, पृष्ठ ५६

प्रज्ञा परिजनों की गहराई एवं ऊँचाई को इन दिनों इस आधार पर रखा जा रहा है कि वे आड़े समय में निजी व्यामोह पर कितना अंकुश लगा सके और युगधर्म के निर्वाह में कितना अनुदान प्रस्तुत कर सकें, इन दिनों समयदान प्रमुख है। अंशदान गौण, प्रतिभाएँ ही अपने श्रम-समय एवं मनोयोग को लगाकर महान कार्य सम्पन्न करती रही हैं। प्रज्ञा परिवार की जाग्रत् आत्माओं को समयदान के लिए अवसर खोजना ही होगा। - पूज्य गुरुदेव

२. प्रामाणिक सत्पात्रों की खोज

१. चाहिए साहसी, जिम्मेदार—युग निर्माण योजना, शतसूत्री कार्यक्रमों में बँटी हुई है। वे यथास्थान, यथास्थिति, यथासंभव कार्यान्वित भी किए जा रहे हैं, पर एक कार्यक्रम अनिवार्य है और वह यह कि इस विचारधारा को जन-मानस में अधिकाधिक गहराई तक प्रविष्ट कराने, उसे अधिकाधिक व्यापक बनाने का कार्यक्रम पूरी तत्परता के साथ जारी रखा जाए। हम थोड़े व्यक्ति युग को बदल डालने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। धीरे-धीरे समस्त मानव समाज को सद्भावना सम्पन्न एवं सन्मार्ग मार्गी बनाना होगा और यह तभी संभव है जब यह विचारधारा गहराई तक जन-मानस में प्रविष्ट कराई जा सके। इसलिए अपने आस-पास के क्षेत्र में इस प्रकाश को व्यापक बनाए रखने का कार्य तो परिवार के प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति को करते ही रहना होगा।

अन्य कोई कार्यक्रम कहीं चले या न चले, पर यह कार्य तो अनिवार्य है कि इस विचारधारा से अधिकाधिक लोगों को प्रभावित करने के लिए निरंतर समय, श्रम, तन एवं मन लगाया जाता रहे। जो ऐसा कर सकते हैं, जिनमें ऐसा करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई है, उन्हें हम अपना उत्तराधिकारी कह सकते हैं। धन नहीं, लक्ष्य हमारे हाथ में है, उसे पूरा करने का उत्तरदायित्व भी हमारे उत्तराधिकार में किसी को मिल सकता है। उसे लेने वाले भी कोई बिरले ही होंगे। इसलिए उनकी खोज तलाश आरंभ करनी पड़ रही है।

-अखण्ड ज्योति, दिसम्बर १९६४, पृष्ठ ४९, ५०

२. हमें अपने परिवार में से अब ऐसे ही व्यक्ति ढूँढ़ने हैं, जिन्होंने अध्यात्म का वास्तविक स्वरूप समझ लिया हो और जीवन की सार्थकता के लिए चुकाए जाने वाले मूल्य के बारे में जिन्होंने अपने भीतर आवश्यक

साहस एकत्रित करना आरंभ कर दिया हो। हम अपना उत्तराधिकार उन्हें ही सौंपेंगे। बेशक, धन-दौलत की दृष्टि से कुछ भी मिलने वाला नहीं है, हमारे अंत:करण में जलने वाली आग की एक चिनगारी ही उनके हिस्से में आएगी, पर वह इतनी अधिक मूल्यवान है कि उसे पाकर कोई भी व्यक्ति धन्य हो सकता है।

-अखण्ड ज्योति, जनवरी १९६५, पृष्ठ ५०

३. जिनमें साहस हो, आगे आवें। हमारा निज का कुछ भी कार्य या प्रयोजन नहीं है। मानवता का पुनरुत्थान होने जा रहा है। ईश्वर उसे पूरा करने ही वाले हैं। दिव्य आत्माएँ उस दिशा में कार्य कर भी रही हैं। उज्ज्वल भविष्य की आत्मा उदय हो रही है, पुण्य प्रभात का उदय होना सुनिश्चित है। हम चाहें तो उसका श्रेय ले सकते हैं और अपने आप को यशस्वी बना सकते हैं।

देश को स्वाधीनता मिली, उसमें योगदान देने वाले अमर हो गए। यदि वे नहीं भी आगे आते तो भी स्वराज्य तो आता ही, पर वे बेचारे और अभागे मात्र बनकर रह जाते। ठीक वैसा ही अवसर अब है। बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक क्रांति अवश्यंभावी है। उसका मोर्चा राजनीतिक लोग नहीं धार्मिक कार्यकर्त्ता सँभालेंगे। यह प्रक्रिया युग निर्माण योजना के रूप में आरंभ हुई है। हम चाहते हैं इसके संचालन का भार मजबूत हाथों में चला जाए। ऐसे लोग अपने परिवार में जितने भी हों, जो भी हों, जहाँ भी हों, एकत्रित हो जाएँ और अपना काम सँभाल लें। उत्तरदायित्व सौंपने को प्रतिनिधि नियुक्त करने की योजना के पीछे हमारा यही उद्देश्य है।

-अखण्ड ज्योति, जनवरी १९६५, पृष्ठ ५२

४. मशाल किन्हें सौंपें?—इस भीड़-भाड़ में से हम ऐसे लोगों को तलाश करने में कुछ दिन से लगे हुए हैं, जो हमारे सच्चे आत्मीय साथी एवं कुटुंबी के रूप में अपनी निष्ठा का परिचय दे सकें। बात यह है कि हमारा कार्यकाल समाप्त होने जा रहा है। हमें अपनी वर्तमान गतिविधियाँ देर तक चलाते रहने का अवसर नहीं मिलेगा। किसी महान

शक्ति के मार्गदर्शन एवं संकेत पर हमारा अब तक का जीवनयापन हुआ है। आगे भी इस शरीर का एक-एक क्षण उसी की प्रेरणा से बीतेगा। वह शक्ति हमें वर्तमान कार्यक्रमों से विरत कर दूसरी दिशा में नियोजित कर देगी, ऐसा आभास मिल गया है। अतएव हमारा यह सोचना उचित ही है कि जो महान उत्तरदायित्व हमारे कंधों पर है, उसका भार-वहन करने की जिम्मेदारी किन के कंधों पर डालें? जो मशाल हमारे हाथ में थमाई गई है, उसे किन हाथों में सौंप दें? उस दृष्टि से हमें अपने उत्तराधिकारियों की तलाश करनी पड़ रही है।

-अखण्ड ज्योति, मई १९६६, पृष्ठ ४५, ४६

५. इस थोड़ी-सी अवधि में कुछ अधिक ऊँचे स्तर के साथी ढूँढ़ने हैं, जिनके हाथों में उस मशाल को सौंपा जा सके जो आज हमारे हाथ में है। इसके लिए अधिक मजबूत अधिक साहसी और अधिक सच्चे आदमी चाहिए। अखण्ड ज्योति परिवार पर जब नजर डालते हैं, तो उनमें से अधिकतर 'पढ़ाकू' लोग दीखते है। पढ़ना भी एक व्यसन है। अच्छी वस्तुएँ पढ़ने को अच्छा व्यसन कहा जा सकता है। ऐसे विद्या व्यसनी लोग अभी हमारा साहित्य रुचि से पढ़ते हैं, पीछे अपनी रुचि की चीजें कहीं अन्यत्र से प्राप्त कर लेंगे। उनकी गाड़ी तो चलती रहेगी, पर हमारी गाड़ी रुक जाएगी।

जो उच्च विचारों को पढ़ते हैं, पर उन्हें गले में नीचे नहीं उतारते, उन्हें व्यवहारिक जीवन में स्थान नहीं देना चाहते, ऐसे लोगों से कोई बड़ी आशा किस प्रकार की जाए? हमें कर्मठ और प्रबुद्ध साथी चाहिए—ऐसे जो युग निर्माण की भूमिका प्रस्तुत करने के लिए अपने तुच्छ स्वार्थों की उपेक्षा, अवहेलना कर सकें; जो निजी समस्याओं में उलझे रहकर ही जिंदगी व्यतीत कर डालने की व्यर्थता और भारतीय आदर्शों के लिए कुछ त्याग और बलिदान की साध अपने भीतर सँजो सकें।

-अखण्ड ज्योति, अक्टूबर १९६६, पृष्ठ ४६, ४७

६. जिस मशाल को हम पिछले ४२ वर्ष से जला रहे हैं, अब उसे दूसरे उत्तरदायी उत्तराधिकारियों के हाथ में सौंपना होगा। इसलिए उनका

आह्वान किया जा रहा है, जिनमें जीवन है। उन्हें जानना चाहिए कि यह सामान्य समय नहीं है। इसमें प्रबुद्ध आत्माओं को सामान्य स्तर का जीवन नहीं जीना है। कुछ अतिरिक्त कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व उनके कंधे पर हैं, जिनकी यदि उपेक्षा की जाती रही, तो आत्म-प्रताड़ना की इतनी बड़ी वेदना उनके अंतरंग में उठती रहेगी कि वह आत्म-ग्लानि का कष्ट शारीरिक विषम वेदनाओं से भी अधिक भारी पड़ेगा और उसे सहन करना कठिन हो जाएगा। धन, स्वास्थ्य, यश, पद आदि की क्षति आसानी से पूरी हो सकती है, पर कर्त्तव्य की उपेक्षा करते हुए, जीवन का अमूल्य अवसर गँवा बैठने पर, जब समय निकल जाता है, तब अपनी चूक पर ऐसा पश्चात्ताप होता है, जिसकी व्यथा सहन कर सकना कठिन हो जाता है।

-अखण्ड ज्योति, नवम्बर १९६८, पृष्ठ ६३

७. **मूर्धन्य महामानवों की आवश्यकता**—भारत को अपना घर ही नहीं सँभालना है। हर क्षेत्र में विश्व का नेतृत्व भी करना है। इसके लिए उपयुक्त स्थिति उत्पन्न कर सकने वाले ऐसे महामानवों की आवश्यकता है, जो स्वतंत्रता संग्राम वालों से भी अधिक भारी हों। लड़ने से निर्माण का कार्य अधिक कुशलता और क्षमता का है, सो हमें अगले दिनों ऐसे मूर्धन्य महामानवों की आवश्यकता पड़ेगी, जो अपने उज्ज्वल प्रकाश से सारा वातावरण प्रकाशवान् कर दें।

-अखण्ड ज्योति, मार्च १९६९, पृष्ठ ६०

८. **बड़े आदमी नहीं, महान बनें**—बड़े आदमी बनने की हविस और ललक स्वभावत: हर मनुष्य में भरी पड़ी है। उसके लिए किसी को सिखाना नहीं पड़ता। धन, पद, इंद्रिय सुख, प्रशंसा, स्वास्थ्य आदि कौन नहीं चाहता? वासना और तृष्णा की पूर्ति में कौन व्याकुल नहीं हैं? पेट और प्रजनन के लिए किसका चिंतन नियोजित नहीं है। अपने परिवार को हमने बड़े आदमियों का समूह बनाने की बात कभी नहीं सोची। उसे महापुरुषों का देव समाज देखने की ही अभिलाषा सदा से रही है। वस्तुत: महामानव बनना ही व्यक्तिगत जीवन का साफल्य और समाज का सौभाग्य माना जा सकता है।

मनुष्य जीवन की सार्थकता महामानव बनने में है। इसके अतिरिक्त आज की परिस्थितियाँ महामानवों की इतनी आवश्यकता अनुभव करती हैं कि उन्हीं के लिए सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई है। हर क्षेत्र उन्हीं के अभाव में वीरान और विकृत हो रहा है। वे बढ़ें तो ही विश्व के हर क्षेत्र में संव्याप्त उलझनों और शोक-संतापों का समाधान होगा। अपने परिवार का गठन हमने इसी प्रयोजन के लिए किया था कि इस खान से नर-रत्न निकलें और विश्व इतिहास का एक नया अध्याय आरंभ करें। युग परिवर्तन जैसे महान अभियान को उथले स्तर के व्यक्तियों द्वारा नहीं केवल उन्हीं लोगों से सम्पन्न किया जा सकता है जिनको महापुरुषों की श्रेणी में खड़ा किया जा सके।

-अखण्ड ज्योति, जून १९७१, पृष्ठ ५५

९. अगले चरण की तैयारी—युग निर्माण के लिए अगले ही दिनों हमें अनेक रचनात्मक और संघर्षात्मक प्रक्रियाएँ, हलचलें आरंभ करनी पड़ेंगी। उसके लिए ऐसे कर्मठ, भावनाशील, प्रतिभाशाली और प्रबुद्ध व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी, जो अपना सारा जीवन ही इस पुण्य प्रयोजन के लिए समर्पित करें और सारी विचारणा एवं आकांक्षा उसी केन्द्र पर केन्द्रीभूत कर दें। अपने आपको और अपने संकीर्ण स्वार्थों को भूलकर विश्व मंगल के लिए अपने को उत्सर्ग करने में गर्व-गौरव का अनुभव करें। ऐसी प्रबुद्ध आत्माओं से रहित भारत भूमि नहीं है। वे हैं, उन्हें जगाया, उठाया और लगाया जाएगा।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६९, पृष्ठ ४

१०. तपोनिष्ठों की जरूरत है—एक नया युद्ध हम लड़ेंगे। परशुराम की तरह लोक मानस में जमी हुई अवांछनीयता को विचार अस्त्रों से हम काटेंगे। सिर काटने का मतलब विचार बदलना भी है। परशुराम की पुनरावृत्ति हम करेंगे। जन-जन के मन-मन पर गहराई तक गड़े हुए अज्ञान और अनाचार के आसुरी झंडे हम उखाड़ फेकेंगे। इस युग का सबसे बड़ा और सबसे अंतिम युद्ध हमारा ही होगा, जिसमें भारत एक देश न होगा महाभारत बनेगा और उसका दार्शनिक साम्राज्य विश्व के कोने-कोने में

पहुँचेगा। निष्कलंक अवतार यही है। सद्भावनाओं का चक्रवर्ती सार्वभौम साम्राज्य जिस युग अवतारी निष्कलंक भगवान् द्वारा होने वाला है वह और कोई नहीं विशुद्ध रूप में अपना युग निर्माण आंदोलन ही है।

महान संभावनाएँ हम उत्पन्न करेंगे। उसके लिए सच्चाई और सद्भावना भरे उत्कृष्ट तपोनिष्ठों की जरूरत है। इसी को इन दिनों विरजा और बीना जा रहा है।

-अखण्ड ज्योति, मई १९७०, पृष्ठ ६०, ६१

११. उद्देश्यों की पूर्ति हेतु साधन और उनकी पूर्ति—यह हमारी वास्तविकता की परीक्षा वेला है। अज्ञान-असुर के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रचुर साधनों की आवश्यकता पड़ेगी। जनशक्ति, बुद्धिशक्ति, धनशक्ति जितनी भी जुटाई जा सके उतनी कम है। बाहर के लोग आपाधापी की दलदल में आकंठ मग्न हैं। इस युग पुकार को अखण्ड ज्योति परिवार ही पूरा करेगा।

जिनको पारिवारिक उत्तरदायित्वों का न्यूनतम निर्वाह करने के लिए जितना समय लगाना अनिवार्य है, वे उस कार्य में उतना ही लगाएँ और शेष समय अज्ञान के असुर से लड़ने के लिए लगाएँ। जिनके बच्चे बड़े हो चुके, जिनके घर में निर्वाह व्यवस्था करने वाले दूसरे लोग मौजूद हैं वे वह उत्तरदायित्व उन लोगों पर मिल-जुलकर पूरा करने की व्यवस्था बनाएँ। जिनने संतान के उत्तरदायित्व पूरे कर लिए वे पूरी तरह वानप्रस्थ में प्रवेश करें और परिव्राजक बनकर जन-जागरण का अलख जगाएँ। जगह-जगह छोटे-छोटे आश्रम बनाने की आवश्यकता नहीं है। इस समय तो हमें परिव्राजक बनकर भ्रमण करने के अतिरिक्त दूसरी बात सोचनी ही नहीं चाहिए।

बूढ़े होने पर संन्यास लेने की कल्पना निरर्थक है। जब शरीर अर्द्धमृतक हो जाता है और दूसरों की सहायता के बिना दैनिक निर्वाह ही कठिन हो जाता है, तो फिर सेवा-साधना कौन करेगा। युग सैनिकों की भूमिका तो वे ही निभा सकते हैं, जिनके शरीर में कड़क मौजूद है। जो शरीर और मन से समर्थ हैं। इस तरह भी भावनाशील एवं प्रबुद्ध जनशक्ति की अधिक मात्रा में आवश्यकता है। सड़े-गले, अधपगले, हरामखोर और दुर्व्यसनी तो

साधु-बाबाओं के अखाड़ों में वैसे ही बहुत भरे पड़े हैं। युग देवता को तो वह प्रखर जनशक्ति चाहिए, जो अपना बोझ किसी पर न डाले वरन् दूसरों को अपनी बलिष्ठ भुजाओं से ऊँचा उठा सकने में समर्थ हों।

अखण्ड ज्योति परिवार में से ऐसी ही समर्थ एवं सुयोग्य जनशक्ति का आह्वान किया जा रहा है। योग, तप, सेवा, पुरुषार्थ जवानों द्वारा ही किया जा सकता है। वोल्टेज कम पड़ जाने पर पंखा, बत्ती आदि सभी टिमटिम जलते हैं। नवनिर्माण के लिए भी प्रौढ़शक्ति ही काम देगी। बुड्ढे-बीमारों से वह काम भी चलने वाला नहीं है। अस्तु, आह्वान उसी समर्थ जनशक्ति का किया जा रहा है।

-अखण्ड ज्योति, मार्च १९७५, पृष्ठ ५६-५७

१२. मणिमुक्तकों की तलाश— इन दिनों ऐसे मणिमुक्तकों की तलाश हो रही है जिनका सुगठित हार युग चेतना की महाशक्ति के गले में पहनाया जा सके। ऐसे सुसंस्कारियों की तलाश युग निमंत्रण पहुँचा कर की जा रही है, जो जीवित होंगे करवट बदलने में उठ खड़े होंगे और संकट काल में शौर्य प्रदर्शित करने वाले सेनापतियों की तरह अपने को विजयश्री वरण करने के अधिकारी के रूप में प्रस्तुत करेंगे। कृपण और कायर ही कर्त्तव्यों की पुकार सुनकर काँपते, घबराते और किसी कोटर में अपना मुँह छिपाने की विडंबना रचते हैं। एक दिन मरते तो वे भी हैं, पर खेद पश्चात्ताप की कलंक कालिमा सिर पर लादे हुए।

महाविनाश की विभीषिकाएँ अपनी मौत मरेंगी। अरुणोदय अगले ही क्षणों ज्वाजल्यमान दिवाकर की तरह उगेगा। यह संभावना सुनिश्चित है। देखना इतना भर है कि इस परिवर्तन काल में युग शिल्पी की भूमिका संपादन करने के लिए श्रेय कौन पाता है? किसके कदम समय रहते श्रेय पथ पर आगे बढ़ते हैं।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९८८, पृष्ठ ६१

१३. पुनर्गठन का उद्देश्य—युग निर्माण परिवार यों चल तो बहुत समय से रहा था, पर उसके अनेक मणि-माणिक-कमल-परिजात ऐसे ही लुके-छिपे पड़े थे। अब इनमें से प्रत्येक को सजग, सुगठित, समुन्नत

और सक्रिय बनाने का निश्चय किया गया है। अब तक जिज्ञासाओं का समाधान ही करते बन पड़ा। क्रियाशीलों को प्रोत्साहन भर दिया। अब निष्क्रियता को सक्रियता में परिणत करने का विचार है। जो प्रतिभाएँ अब तक हमारे विचारों के प्रति श्रद्धा रखने तक सीमित रही हैं, अब उन्हें कंधे से कंधा और कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए कहा जाएगा। पुनर्गठन का यही प्रधान उद्देश्य है।

-अखण्ड ज्योति, जुलाई १९७७, पृष्ठ ५१

१४. शरीर नहीं, चेतना के संबंधी चाहिए—अब हम युग निर्माण परिवार का प्रारंभिक सदस्य उन्हें मानेंगे, जिनमें मिशन की विचारधारा के प्रति आस्था उत्पन्न हो गई है, जो उसका मूल्य, महत्त्व समझते हैं, उसके लिए जिनके मन में उत्सुकता एवं आतुरता रहती है। जिनमें यह उत्सुकता उत्पन्न न हुई हो उनका हमसे व्यक्तिगत संबंध परिचय भर माना जा सकता है, मिशन के साथ उन्हें संबद्ध नहीं माना जाएगा।

यहाँ इन दो बातों का अंतर स्पष्ट समझ लिया जाना चाहिए कि हमारा व्यक्तिगत परिचय एक बात है और मिशन के साथ संबंध दूसरी। व्यक्तिगत परिचय को शरीरगत संपर्क कहा जा सकता है और मिशन के प्रति घनिष्ठता को हमारे प्राणों के साथ लिपटना। शरीर संबंधी तो नाते-रिश्तेदारों से लेकर भवन निर्माण, प्रेस, खरीद फरोख्त आदि के सिलसिले में हमारे संपर्क में आने वाले ढेरों व्यक्ति हैं। वे भी अपने संपर्क का गौरव अनुभव करते हैं। किंतु हमारे अंत:करण का, हमारी आकांक्षाओं एवं प्रवृत्तियों का न तो उन्हें परिचय ही है और न उस नाते संबंध सहयोग ही है। उसी श्रेणी में उन्हें भी गिना जाएगा जिन्होंने कभी गुरु दीक्षा अथवा भेंट वार्तालाप के नाते सामयिक संपर्क बनाया था। इस बहिरंग शरीरगत संपर्क को भी झुठलाया नहीं जा सकता। उनके स्नेह, सद्भाव के लिए हमारे मन में स्वभावत: जीवन भर कृतज्ञता एवं आभार के भाव बने रहेंगे। किंतु जो हमारे अंत:करण को भी छू सके हैं, छू सकते हैं, उनकी तलाश हमें सदा से रही है, रहेगी भी।

-अखण्ड ज्योति, जुलाई १९७७, पृष्ठ ५१, ५२

१५. जाग्रत् आत्माएँ उत्तरदायित्व सँभालें—जाग्रत् आत्माएँ इस अवसर पर अपना दायित्व सँभालें, इसलिए उन्हें खदानों में छिपे मुक्तकों की तरह प्रयत्नपूर्वक खोजा जा रहा है। जगाया और बुलाया जा रहा है। इस ढूँढ़ खोज के लिए दीपयज्ञों की पुनीत ज्वाला जलाई गई है। अंधकार में खोई हुई वस्तुओं को प्रकाश जलाकर ही खोजा-उठाया जाता है। जन-जन को झकझोरने वाली शृंखला के सुविस्तृत और सुनिश्चित अभियान की तरह ही दीपयज्ञ अभियान को चलाया जा रहा है। धार्मिकता के भावनात्मक वातावरण में ऐसी ढूँढ़-खोज सहज ही बन भी पड़ती है।

देव आरती में बच्चे तो पाई-पैसा चढ़ाकर भी मन बहला लेते हैं, पर प्रतिभाओं को तो छोटी नाली की तरह गंगा नर्मदा जैसी दिव्य धारा में अपने को समर्पित ही करना पड़ता है। हनुमान, अंगद, अर्जुन, भागीरथ, हरिश्चन्द्र, शिवा, भामाशाह, विनोबा, दयानंद, विवेकानंद जैसे महामना ऐसा ही साहस दिखाकर कृतकृत्य हुए थे। कृपण तो सड़ी कीचड़ में जन्मने वाले कृमि कीटकों की तरह उपजते और उसी नरक में मरकर अंतर्ध्यान हो जाते हैं।

दीपयज्ञों के प्रकाश में ज्योतिर्मय आत्माएँ उभरती, झिलमिलाती दीख पड़ेंगी और अपनी उपयुक्त जगह ग्रहण करेंगी ऐसी आशा रखी गई है। महाकाल का यह शंखनाद निष्फल नहीं जा सकता। उसे सुनकर मूर्च्छितों, प्रसुप्तों में भी चेतना का संचार होगा। जो सर्वथा मर चुके हैं उनकी बात दूसरी है।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९८८, पृष्ठ ६१

साधारण समय और विशेष समय में साधारण व्यक्ति और विशेष व्यक्ति में एक विशिष्ट अंतर होता है। साधारण की चाल धीमी होती है और विशिष्ट को तत्काल निर्णय करने से लेकर कदम उठाने तक की प्रक्रिया सम्पन्न करनी होती है।

३. युग निर्माण की चुनौती स्वीकारें

१. युग की प्रखर चुनौती—सामाजिक असभ्यता हमारे लिए राजनीतिक गुलामी से अधिक त्रासदायक स्थिति में हमारे सामने मौजूद है। स्वाधीनता संग्राम के बलिदानी सेनानी स्वर्ग से हमें पूछते हैं कि हमारा कारवाँ एक ही मंजिल पर पड़ाव डालकर क्यों रुक गया? आगे का पड़ाव सामाजिक असभ्यता के उन्मूलन का था, अगला मोर्चा वहाँ जमना था पर सैनिकों ने हथियार खोलकर क्यों रख दिए? युग की आत्मा इन प्रश्नों का उत्तर चाहती है। हमें इसका उत्तर देना होगा। यदि हम सामाजिक असभ्यता के उन्मूलन के लिए कुछ नहीं करना चाहते, कुछ नहीं कर सकते, तो जहाँ भावी इतिहासकार जिस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों को श्रद्धा से मस्तक झुकाते रहेंगे वहाँ हमें धिक्कारने में भी कसर न रहने देंगे।

आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए अग्रसर हुए हम धर्मप्रेमी ईश्वर भक्त लोगों के कंधों पर लौकिक कर्त्तव्यों की पूर्ति का भी एक बड़ा उत्तरदायित्व है। ईश्वर को हम पूजें और उसकी प्रजा से प्रेम करें; भगवान् का अर्चन करें और वाटिका को, दुनिया को सुरम्य बनावें, तभी हम उसके सच्चे भक्त कहला सकेंगे, तभी उसका सच्चा प्रेम प्राप्त करने के अधिकारी हो सकेंगे।

हमारे आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति का प्रथम सोपान सुव्यवस्थित जीवन है। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन, सभ्य समाज उसके तीन आधार हैं। इन आधारों को संतुलित करने के लिए, सबल और समर्थ बनाने के लिए हमें कुछ करना ही पड़ेगा, कटिबद्ध होना ही पड़ेगा। युग निर्माण का महान कार्य हमारे इस कर्तृत्व पर ही निर्भर है। इसकी न तो अब

उपेक्षा की जा सकती है और न आँखें चुराई जा सकती हैं। भगवान् यही हम से कराना चाहते हैं। यही हमें करना भी होगा।

-अखण्ड ज्योति, जनवरी १९६२, पृष्ठ ३५, ३६

२. युग नेतृत्व का समय आ पहुँचा, जब जन नेतृत्व का भार धर्मतंत्र के कंधों पर लादा जाएगा। धर्म क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्ति नवनिर्माण की वास्तविक भूमिका का सम्पादन करेंगे। मानव जाति को असीम पीड़ाओं से मुक्त करने का श्रेय इसी मोर्चे पर लड़ने वालों को मिलेगा। इसलिए युग पुकारता है कि प्रत्येक प्रबुद्ध आत्मा आगे बढ़े। धर्म के वर्तमान स्वरूप को परिष्कृत करे। उस पर लदी हुइ अनुपयोगिता की मलिनता को हटाकर स्वच्छता का वातावरण उत्पन्न करे। इसी शस्त्र से प्रस्तुत विभीषिकाओं का अंत किया जाना संभव है, इसलिए उसे चमकती धार वाला तीक्ष्ण भी रखना ही पड़ेगा। जंग लगे व भोंथरे हथियार अपना वास्तविक प्रयोजन हल कहाँ कर पाते हैं। धर्मतंत्र का आज जो स्वरूप है, उससे किसी को कोई आशा नहीं हो सकती है। इसे तो बदलना, पलटना एवं सुधारना अनिवार्य ही होगा।

सुधरे हुए धर्मतंत्र का उपयोग सुधरे हुए अंत:करण वाले प्रबुद्ध व्यक्ति, सुधरे हुए ढंग से करें, तो उससे विश्व-संकट के हल करने और धरती पर स्वर्ग, नर से नारायण अवतरण करने का अभीष्ट उद्देश्य पूरा होकर ही रहेगा। सुधरी हुई परिस्थितियों की गंगा का अवतरण करने के लिए आज अनेक भागीरथों की आवश्यकता है। यह आवश्यकता कौन पूरी करे? माता भारती हमारी ओर आशा भरी आँखों से देखती है। अंतरिक्ष में उसकी अभिलाषा इन शब्दों में गूँजती है-

जना करती हैं जिस दिन के लिए संतान सिंहनियाँ।
मेरे शेरों से कह देना कि वह दिन आ गया, बेटा।।

युग पुकार के अनुरूप क्या प्रत्युत्तर दिया जाए, यह हमें निर्णय करना ही होगा और उस निर्णय का आज ही उपयुक्त अवसर है।

-अखण्ड ज्योति, मई १९६५, पृष्ठ ५२

३. युग निर्माण की पात्रता अर्जित करें—युग निर्माण का प्रयोजन

साधारण मनोभूमि के घटिया, स्वार्थी, ओछे कायर और कमजोर प्रकृति के लोग न कर सकेंगे। इसके लिए समर्थ, तेजस्वी आत्माएँ अवतरित होंगी और वे ही इस कार्य को पूरा करेंगी। जो लोग तनिक-सा त्याग, बलिदान का प्रसंग आ जाने पर बगलें झाँकने लग जाते हैं, उतने बड़े कार्य को कर सकने के योग्य नहीं। जिस मिट्टी से हम बनें हैं, रेतीली और कमजोर है कोई टिकाऊ चीज उससे कैसे बन सकती है। जो एक-दो माला जप करने मात्र से तीनों लोक की ऋद्धि-सिद्धियाँ लूटने की आशा लगाए बैठे रहते हैं और जीवन-शोधन तथा परमार्थ की बात सुनते ही काठ हो जाते हैं, ऐसे ओछे आदमी अध्यात्म का क, ख, ग, घ भी नहीं जानते। आत्मबल तो उनके पास होगा ही कहाँ से। जिसके पास आत्मबल नहीं, वह युग-परिवर्तन की भूमिका में कोई कहने लायक योगदान दे भी कहाँ से सकेगा?

-अखण्ड ज्योति अगस्त १९६६, पृष्ठ-४४

४. सज्जन सृजन के निमित्त आगे आएँ—आज समय की आवश्यकता है कि सज्जन एवं सत्पुरुष आगे आएँ, मैदान में उतरें और पतनोन्मुख मनुष्यता की रक्षा विकृतियों, दुष्प्रवृत्तियों एवं दुष्टताओं से करें। आज अच्छाई, बुराई का देवासुर संग्राम छिड़ ही जाना चाहिए। देवपुरुष सज्जनों को अपने-अपने क्षेत्रों में अपने योग्य मोर्चा सँभाल लेना चाहिए। अपने सत्कार्यों, सदाचरण एवं सद्वृत्तियों की मशालें लेकर निकलें और जहाँ-जहाँ अंधकार देखें उसे दूर करें। समाज की विकृतियाँ अब उस सीमा पर पहुँच चुकी हैं, जहाँ यदि उन्हें आगे बढ़ने से न रोका गया तो निश्चय ही जीवन न रह जाएगा।

-अखण्ड ज्योति जनवरी १९६७ पृष्ठ ३०

५. नवनिर्माण, देवत्व सम्पन्न प्रतिभाएँ ही करेंगी—युग परिवर्तन की नवनिर्माण प्रक्रिया उन व्यक्तियों के द्वारा सम्पन्न होगी जिनमें देवत्व का प्रकाश समुचित मात्रा में प्रखर हो चला है। लेखक, वक्ता, नेता, अभिनेता, कलाकार, आंदोलनकारी, प्रतिभावान व्यक्ति अपने साधनों के आधार पर कुछ समय के लिए चमत्कार जैसा जादू

खड़ा कर सकते हैं पर उसमें स्थिरता तनिक भी न होगी। बालू की दीवार की तरह उनकी कृत्तियाँ देखते-देखते धूल-धूसरित हो जाती हैं और जिसका आज बहुत जयघोष था, कल उसके अस्तित्व का पता लगाना भी कठिन हो जाता है।

स्थिरता तो सच्चाई और आत्मबल की गहराई में सन्निहित है। युग निर्माण जैसे महान कार्य ठोस आधार की शिला पर ही प्रतिष्ठापित हो सकते हैं। उनका भारी उत्तरदायित्व वहन कर सकने की क्षमता केवल देवत्व संपन्न महामानवों में ही मिलेगी। अतएव नवनिर्माण के कर्णधारों, सूत्र-संचालकों, सेनानायकों का देवत्व के प्रकाश से प्रकाशवान बनना या बनाया जाना आवश्यक है।

–अखण्ड ज्योति, दिसम्बर १९६७ पृष्ठ १४

६. बौद्धिक एवं भावनात्मक स्तर का उभार आवश्यक—एक ऐसी जनशक्ति का उदय होना चाहिए, जो पेट और प्रजनन से कुछ ऊँचा उठकर सोच सके और वासना, तृष्णा के लिए मरते-खपते रहने से आगे बढ़कर देश, धर्म, समाज, संस्कृति के लिए कुछ सेवा-सहयोग की, त्याग-बलिदान की बात सोच सके। कर्मठ लोकसेवियों की जनशक्ति उदय हुए बिना सुधार की सारी विचारणाएँ मनोरंजक कल्पनाएँ मात्र बनकर रह जाएँगी। प्राण तो कर्मठता में रहता है। निर्माण तो पुरुषार्थ से होता है। इसलिए अपने चारों ओर बिखरे हुए नर-पशुओं में हमें मनुष्यता का प्रकाश, गर्व और शौर्य उत्पन्न करना है ताकि वह स्वार्थ, संकीर्णता की परिधि से बाहर निकलकर कुछ ऐसा कर सके, जैसा कि प्रबुद्ध और सजग आत्माएँ अपने स्वरूप, तत्त्व एवं कर्त्तव्य का स्मरण करके प्रयत्न करती रहती हैं।

७. खुलने हैं अनेक मोर्चे— हमारी आगामी तपश्चर्या का प्रयोजन संसार के हर देश में, जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भगीरथों का सृजन करना है। उनके लिए अभीष्ट शक्ति, सामर्थ्य का साधन जुटाना है। रसद और हथियारों के बिना सेना नहीं लड़ सकती। नवनिर्माण के लिए उदीयमान नेतृत्व के लिए परदे के पीछे रहकर हम आवश्यक शक्ति

तथा परिस्थितियाँ उत्पन्न करेंगे। अपनी भावी प्रचंड तपश्चर्या द्वारा यह संभव हो सकेगा और कुछ ही दिनों में हर क्षेत्र से, हर दिशा में, सुयोग्य लोकसेवक अपना कार्य आश्चर्यजनक कुशलता तथा सफलता के साथ करते दिखाई पड़ेंगे। श्रेय उन्हीं को मिलेगा और मिलना चाहिए।

युग निर्माण आंदोलन संस्था नहीं, एक दिशा है। सो अनेक काम लेकर इस प्रयोजन के लिए अनेक संगठनों तथा प्रक्रियाओं का उदय होगा। भावी परिवर्तन का श्रेय युग निर्माण आन्दोलन को मिले, यह आवश्यक नहीं। अनेक नाम रूप हो सकते हैं और होंगे। उससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। मूल प्रयोजन विवेकशीलता की प्रतिष्ठापना और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन से है।

सो हर देश, हर समाज, हर धर्म, हर क्षेत्र में इन तत्त्वों का समावेश करने के लिए अभिनव नेतृत्व का उदय होना आवश्यक है। हम इस महती आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपने शेष जीवन में उग्र लगन, तपश्चर्या का सहारा लेंगे। उसका स्थान और स्वरूप क्या होगा, यह तो हमारे पथ प्रदर्शक को बताना है पर दो प्रयोजनों में से एक उपरोक्त है, जिसके लिए हमें सघन जनसंपर्क छोड़कर नीरवता की ओर कदम बढ़ाने पड़ रहे हैं।

–अखण्ड ज्योति, दिसम्बर १९६९, पृष्ठ ६१, ६२

८. संघर्ष भी करना होगा—दुष्टता की दुष्प्रवृत्तियाँ कई बार इतनी भयावह होती हैं कि उनका उन्मूलन करने के लिए संघर्ष के बिना काम ही नहीं चल सकता। रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी, दुराग्रही, मूढ़मति, अंहकारी, उद्दंड, निहित स्वार्थी और असामाजिक तत्त्व विचारशीलता और न्याय की बात सुनने को ही तैयार नहीं होते। वे सुधार और सदुद्देश्य को अपनाना तो दूर और उलटे प्रगति के पथ पर पग-पग पर रोड़े अटकाते हैं। ऐसी पशुता और पैशाचिकता से निपटने के लिए प्रतिरोध और संघर्ष अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

समाज में अंधपरंपराओं का बोल-बाला है। जाति-पाँति के आधार पर ऊँच-नीच, स्त्रियों पर अमानवीय अत्याचार, बेईमानी और गरीबी

के लिए विवश करने वाला विवाहोन्माद, मृत्युभोज, धर्म के नाम पर लोक-श्रद्धा का शोषण, आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जिनने देश की आर्थिक बरबादी और तज्जनित असंख्य विकृतियों को जन्म दिया है। बेईमानी, मिलावट, रिश्वत और भ्रष्टाचार का हर जगह बोल-बाला है, सामूहिक प्रतिरोध के अभाव में गुंडातत्त्व दिन-दिन प्रबल होता जा रहा है और अपराधों की प्रवृत्ति दिन दूनी-रात चौगुनी पनप रही है। शासक और नेता जो करतूतें कर रहे हैं, उनसे धरती पाँवों तले से निकलती है। यह सब केवल प्रस्तावों और प्रवचनों से मिलने वाला नहीं है। जिनकी दाढ़ में खून लग गया है या जिनका अंहकार आसमान छूने लगा है, वे सहज ही अपनी गतिविधियाँ बदलने वाले नहीं हैं। उन्हें संघर्षात्मक प्रक्रिया द्वारा इस बात के लिए विवश किया जाएगा कि वे टेढ़ापन छोड़ें और सीधे रास्ते चलें।

९. सत्याग्रह पर आधारित संघर्षात्मक आन्दोलन—इसके लिए हमारे दिमाग में गाँधीजी के सत्याग्रह, मजदूरों के घिराव, चीनी कम्युनिष्टों की सांस्कृतिक क्रांति के कड़ुए-मीठे अनुभवों को ध्यान में रखते हुए एक ऐसी समग्र योजना है जिससे अराजकता भी न फैले और अवांछनीय तत्त्वों को बदलने के लिए विवश किया जा सके। उसके लिए जहाँ स्थानीय, व्यक्तिगत और सामूहिक संघर्षों के क्रम चलेंगे, वहाँ स्वयंसेवकों की एक विशाल 'युगसेना' का गठन भी करना पड़ेगा, जो बड़े से बड़ा त्याग-बलिदान करके अनौचित्य से करारी टक्कर ले सके।

भावी महाभारत इसी प्रकार का होगा। वह सेनाओं से नहीं—महामानवों, लोकसेवियों और युगनिर्माताओं द्वारा लड़ा जाएगा। सतयुग लाने से पूर्व ऐसा महाभारत अनिवार्य है। अवतारों की श्रृंखला सृजन के साथ-साथ संघर्ष की योजना भी सदा साथ लाई है। युग निर्माण की लाल मशाल का निष्कलंक अवतार अगले दिनों इसी भूमिका का सम्पादन करे, तो इसमें किसी को आश्चर्य नहीं मानना चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, जून १९७१, पृष्ठ-६०, ६१

१०. जाग्रत् आत्माओं की भूमिका—जाग्रत् आत्माएँ अपने

आंतरिक देवासुर संग्राम को देखें और उसके समाधान के लिए सद्विवेक से, सत्साहस से भगवान् का आह्वान करें। यदि ऐसा हो सके तो इसी देव परिवार की असंख्य प्रतिभाएँ युग देवता के चरणों में अपनी छोटी या बड़ी भावभरी आत्माहुति प्रस्तुत कर सकती हैं। पतन और पीड़ा के गर्त में पड़ी हुई मानवता ने इसी की आर्त पुकार की है। महाकाल ने इसी की माँग की है। जाग्रत् आत्माओं में से हर एक की असाधारण भूमिका इस संदर्भ में हो सकती है। कठिनाई एक ही है। लोभ और मोह के रूप में अंतर्ज्योति को ग्रस लेने वाले राहु केतु के ग्रहण से किस प्रकार मुक्ति पाई जाए।

जो इस देवासुर संग्राम में देव पक्ष का समर्थन करेंगे, उन्हीं के लिए देव-मानवों की तरह युग परिवर्तन की बेला में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकना संभव होगा। जाग्रत् आत्माएँ इस संदर्भ में अधिक गंभीर चिंतन और अधिक प्रखर साहस अपनाएँ। जिससे जितना अनुदान बन पड़े, वह उसके लिए अधिक से अधिक प्रयास करे। यही अपने युग की सबसे बड़ी माँग और यही अंतरात्मा की सबसे बड़ी पुकार है।

-अखण्ड ज्योति, जनवरी १९७८, पृष्ठ-५६, ५७

११. भावनाओं को सक्रियता में बदलने का समय—युग सृजन के पुण्य प्रयोजन की योजना बनाते रहने का समय बीत गया, अब तो करना ही करना शेष है। विचारणा को तत्परता में बदलने की घड़ी आ पहुँची। भावनाओं का परिपाक सक्रियता में होने की प्रतीक्षा की जा रही है। असमंजस में बहुत समय व्यतीत नहीं किया जाना चाहिए।

लक्ष्य विशाल और विस्तृत है। जन-मानस के परिष्कार के लिए प्रज्वलित ज्ञानयज्ञ के, विचारक्रांति के, लाल मशाल के टिमटिमाते रहने से काम नहीं चलेगा। उसके प्रकाश को प्रखर बनाने के लिए जिस तेल की आवश्यकता है, वह जाग्रत् आत्माओं के भाव भरे त्याग-बलिदान से ही निचोड़ा जा सकेगा। मनुष्य में देवत्व का उदय, संसार के समस्त उत्पादनों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण उपार्जन है। इस कृषि कर्म में हमें शीत, वर्षा की चिंता न करते हुए निष्ठावान कृषक की तरह लगना

चाहिए। धरती पर स्वर्ग का अवतरण नया नंदन वन खड़ा करने के समान है। निष्ठावान माली की तरह हमारी कुशलता ऐसी होनी चाहिए जिससे स्रष्टा के इस मुरझाए विश्व उद्यान में बसंती बहार ला सकने का श्रेय मिल सके।

ऐसी सफलता लाने में खाद-पानी जुटाने से ही काम नहीं चलता; उसमें माली को अपनी प्रतिभा भी गलानी, खपानी पड़ती है। भूमि और पौधों के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने वाले किसान और माली की तरह ही हमें देवत्व के उद्‌भव और स्वर्ग के अवतरण में जाग्रत् आत्माओं को अपनी श्रद्धा और क्षमता का समर्पण प्रस्तुत करना होगा।

-अखण्ड ज्योति, मार्च १९७८, पृष्ठ-६१

१२. बड़े कार्य वजनदार व्यक्तियों से ही संभव—राज क्रांति का काम साहस और शस्त्रबल से चल जाता है। आर्थिक क्रांति साधन और सूझ-बूझ के सहारे हो सकती है। यह भौतिक परिवर्तन हैं, जिनके लिए भौतिक साधनों से काम चल जाता है। हमें बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक क्रांति की त्रिवेणी का उद्‌गम खोजना और संगम बनाना है। इसके लिए चरित्र, श्रद्धा और प्रतिभा के धनी दधीचि के वंशजों को ही आगे आना और मोर्चा सँभालना है। भवन, पुल, कारखाने आदि को वास्तुशिल्पी अपनी शिक्षा के सहारे बनाने में सहज ही सफल होते रहते हैं। हमें नए व्यक्ति, नए समाज और नए युग का सृजन करना है। जाग्रत् आत्माओं का भावभरा अनुदान ही यह प्रयोजन पूरा कर सकता है।

जिनके पास भावना है ही नहीं, जो कृपणता के दलदल में एड़ी से चोटी तक फँसे पड़े हैं उन दीन, दयनीय लोगों से क्या याचना की जाए? कर्ण जैसे उदार व्यक्ति ही मरणासन्न स्थिति में अपने दाँत उखाड़ कर देते रहे हैं, हरिश्चन्द्रों ने ही अपने स्त्री, बच्चे बेचे हैं। लोभग्रसितों को तो कामनाओं की पूर्ति कराने से ही फुरसत नहीं, देने का प्रसंग आने पर तो उनका कलेजा ही बैठने लगेगा।

१३. चाहिए प्रतिभावान सृजन सैनिक—व्यक्ति, परिवार और समाज की अभिनव रचना के लिए न तो साधनों की आवश्यकता है

और न परिस्थिति के अनुकूल होने की। उसके लिए ऐसी प्रखर प्रतिभाएँ चाहिए, जिनकी नसों में भावभरा ऋषि रक्त प्रवाहित होता हो। चतुरता की दृष्टि से कौआ सबसे सयाना माना जाता है। शृगाल की धूर्तता प्रख्यात है। मुर्दे खोद खाने में बिज्जू की कुशलता देखते ही बनती है। खजाने की रखवाली करने वाला सर्प लक्षाधीश होता है। भावनात्मक सृजन में तो दूसरी ही धातु से ढले औजारों की आवश्यकता है। आदर्शों के प्रति अटूट आस्था की भट्टी में ही ऐसी अष्टधातु तैयार होती है। आवश्यकता ऐसे ही व्यक्तित्वों की पड़ रही है, जो अष्टधातु के ढले हैं। लोकसेवा का क्षेत्र बड़ा है उसके कोटरों में ऐसे कितने ही छद्मवेषधारी वंचक लूट-खसोट की घात लगाए बैठे रहते हैं, पर उनसे कुछ काम तो नहीं चलता। प्रकाश तो जलते दीपक से ही होता है।

-अखण्ड ज्योति, मार्च १९७८, पृष्ठ-६१, ६२

१४. नेता नहीं, सृजेता करेंगे युग सृजन—युग सृजन में छोटी बड़ी भूमिका जिन्हें निभानी है वे सभी सृजन सैनिक कहे जाएँगे। उनका प्रधान हथियार उनका अपना व्यक्तित्व है; यदि उसमें प्रखरता मौजूद होगी, तो फिर प्रचारात्मक-रचनात्मक-सुधारात्मक जो भी काम हाथ में लिए जाएँगे, वे सभी सफल होंगे। व्यक्तित्वहीनों के लिए युग नेतृत्व का दुस्साहस करना उपहासास्पद है। रंगमंच पर लड़ाई के पैंतरे बदलना एक बात है और रणभूमि में भवानी को बिजली की तरह चमकाना दूसरी। अभिनेता के रूप में तो वक्ता, नेता का कार्य कोई मसखरा भी कर सकता है, किंतु प्रभावोत्पादक परिणाम उत्पन्न कर सकना तो मात्र साहसी, शूरवीरों के लिए ही संभव हो सकता है। युग सृजन के लिए एकमात्र साधन उस पुण्य प्रयोजन को हाथ में लेने वाले प्रखर व्यक्तित्व ही हो सकते हैं। इन दिनों सर्वोपरि आवश्यकता उन्हीं की है।

-अखण्ड ज्योति, जुलाई १९७८, पृष्ठ ६०

१५. नवसृजन की दिशाधारा—आत्मकल्याण और लोककल्याण की गंगा-यमुना जहाँ भी मिलेगी, वहाँ उस दिव्य संगम का एक ही रूप होगा। जन-जागरण के लिए अंशदान, श्रमदान, समयदान करने का

भावभरा उत्साह। यह जब आतुर होता है तो हजार कठिनाइयाँ, विरोध, असहयोग रहने पर भी एकाकी चल पड़ने की साहसिकता जगती है। इस अंत:प्रेरणा को कोई बाहरी शक्ति रोक नहीं सकती, बाहरी प्रलोभन झुका नहीं सकता। वाक् चातुरी एवं मोह-ममता भी उसे फुसला सकने में समर्थ नहीं हो सकती। धनुष से छूटा हुआ तीर लक्ष्य तक पहुँच कर ही रुकता है। जाग्रत् आत्माएँ युगांतरीय चेतना से अनुप्राणित होकर जब प्रज्ञावतार की सहचरी बनती हैं तो फिर उन्हें सोते-जागते एक ही लक्ष्य अर्जुन की मछली की तरह दीखता है।

जनमानस का परिष्कार ही अपने युग का सबसे महत्त्वपूर्ण काम है। आस्थाओं का पुनर्जीवन यही है। ज्ञानयज्ञ एवं विचारक्रांति अभियान इसी प्रक्रिया का नाम है। इस संदर्भ में क्या किया जा सकता है? अपनी स्थिति इस दिशा में कितनी तेजी से कितनी दूरी तक चल सकने की है। इसी का ताना-बाना उनका मस्तिष्क बुनता है, चिंतन और मंथन से हर स्थिति का व्यक्ति अपनी योग्यता और परिस्थिति के अनुरूप काम ढूँढ़ निकालने में सफल हो सकता है। आस्थाओं का कल्पवृक्ष उग पड़ने के उपरांत उसके पल्लव और फल-फूलों की संपदा इतनी बढ़ी-चढ़ी होगी कि उसके सहारे प्रस्तुत संकटों के निवारण में कोई अड़चन शेष न रहे।

आस्थाओं का उन्नयन, चिंतन का परिष्कार, सत्प्रवृत्तियों का अवगाहन, यह दीखते तो तीन हैं, पर वस्तुत: एक ही तथ्य के तीन रूप हैं। सत्कर्म और सद्ज्ञान वस्तुत: सद्भावों का ही उत्पादन है। यही है जाग्रत् आत्माओं के माध्यम से प्रज्ञावतार द्वारा कराया जाने वाला महा प्रयास। हर जाग्रत् आत्मा को अगले दिनों अपनी समस्त तत्परता और तन्मयता जन-मानस के परिष्कार पर केन्द्रीभूत करनी होगी।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७९, पृष्ठ ३८

१६. अंध श्रद्धाओं का समर्थन हानिकारक है—अंध श्रद्धाओं का समर्थन भी जोखिम भरा है। किसी के साथ अनगढ़, अधकचरे, अपरिपक्वों की मंडली हो, तो वह उसे जनशक्ति समझने की भूल

करता रहता है। किसकी श्रद्धा एवं आत्मीयता कितनी गहरी है, इसका पता चलाने का एक मापदंड यह भी है कि वे विसंगतियों के बीच भी स्थिर रह पाते हैं या नहीं? जो अफवाहों की फूँक से उड़ सकते हैं वे वस्तुत: बहुत ही हलके और उथले होते हैं। ऐसे लोगों का साथ किसी बड़े प्रयोजन के लिए कभी कारगर सिद्ध नहीं हो सकता। उन्हें कभी भी, कोई भी, कुछ भी कहकर विचलित कर सकता है। ऐसे विवेकहीन लोगों की छँटनी कर देने के लिए कुचक्रियों द्वारा लगाए गए आरोप या आक्रमण बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

योद्धाओं की मंडली में शूरवीरों का स्तर ही काम आता है। शंकालु, अविश्वासी, कायर प्रकृति के सैनिकों की संख्या भी पराजय का एक बड़ा कारण होती है। ऐसे मूढ़मतियों को अनाज में से भूसा अलग कर देने की तरह यह आक्रमणकारिता बहुत ही सहायक सिद्ध होती है। दुरभिसंधियों के प्रति जनआक्रोश उभरने से सहयोगियों का समर्थन और भी अधिक बढ़ जाता है। उस उभार से सुधारात्मक आंदोलनों का पक्ष सबल ही होता है। कुसमय पर ही अपने पराए की परीक्षा होती है। इस कार्य को आततायी जितनी अच्छी तरह सम्पन्न करते हैं, उतना कोई और नहीं। अस्थिर मति और प्रकृति के साथियों से पीछा छूट जाना और विवेकवानों का समर्थन, सहयोग बढ़ना जिन प्रतिरोधों के कारण संभव होता है वह आक्रमणों की उत्तेजना उत्पन्न हुए बिना संभव ही नहीं होता।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७९, पृष्ठ-५३, ५४

१७. अभियान की व्यापकता—एक ओर विनाश की विभीषिकाएँ अपना गर्जन-तर्जन करती हैं। दूसरी ओर सृजन की शक्तियाँ सुरक्षा एवं सृजन के प्रयत्नों में निरत हैं। इन परिस्थितियों में प्रत्येक जागरूक का कर्त्तव्य है कि वह पेट प्रजनन के पशु प्रयोजनों में निरत न रहे, वरन् यह सोचे कि क्या युग समस्याओं के समाधान में उसका कुछ योगदान हो सकता है? ध्वंस को निरस्त और सृजन को समर्थ बनाने के लिए इस विश्व संकट की घड़ी में अपना विशिष्ट कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व

समझना ही दूरदर्शियों के लिए उपयुक्त है। युग चुनौती इसी के लिए झकझोरती है और युग साधकों को अग्रिम पंक्ति में खड़े होने की प्रेरणा उन सभी को देती है जिनमें अदृश्य को देखने और तथ्य को समझने की क्षमता विद्यमान है।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९७९, पृष्ठ ३५

१८. विचार क्रांति हेतु सद्भाव सम्पन्न मनीषा भी आवश्यक— विचारक्रांति अभियान किसी सामाजिक कुरीति, सांप्रदायिक प्रथा, मान्यता जैसी छोटी परिधि तक सीमित नहीं है। ऐसा होता तो उस क्षेत्र को प्रभावित करने वाले थोड़े से सुधारकों से भी काम चल सकता था। पर बात गहरी भी, विस्तृत भी और साथ ही अति महत्त्वपूर्ण भी है। इससे भी बड़ी एवं विचित्र कठिनाई यह है कि उसे वीर बलिदानी भी नहीं कर सकते। इसके लिए सद्भाव सम्पन्न मनीषा की आवश्यकता पड़ेगी। अकेली मनीषा तो सहज उपलब्ध है। उसे पैसा देकर कहीं भी खरीदा जा सकता है और उचित अनुचित कुछ भी कराया जा सकता है। मिशन के लिए इसे प्रयुक्त करना तो गरिमा के प्रतिकूल है ही, प्राप्त करना तक कठिन है। खरीदी हुई मनीषा श्रद्धा रहित होने पर अभीष्ट प्रयोजन में गहराई तक उतर भी न सकेगी। ऐसी लँगड़ी-लूली, कानी-कुबड़ी भीड़ किसी प्रकार किसी हद तक चल भी पड़ी तो वह निर्जीव होने के कारण वाँछित प्रयोजन सिद्ध करने में निरर्थक एवं असफल ही सिद्ध होगी।

-अखण्ड ज्योति, दिसम्बर १९७९, पृष्ठ-४०

१९. चाहिए परिष्कृत प्रतिभा— बुद्धिमान मनुष्य आमतौर से धूर्त होते हैं। तथाकथित बुद्धिजीवियों पर आज दृष्टिपात करते हैं, तो लगता है कि इस विशिष्टता ने उन्हें चतुर, कुशल, प्रवीण तो बहुत बनाया पर आदर्शों के निर्वाह में वे एक प्रकार से असमर्थ ही बने रहे। लेखक, कवि, वक्ता, वकील, नेता, कलाकार वर्ग के बुद्धिवादी संख्या में थोड़े ही होते हैं पर यदि उनकी प्रतिभा सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन में लग सकी होती, तो उसका प्रभाव परिणाम निश्चिततः भविष्य निर्धारण की

दृष्टि से अत्यंत श्रेयस्कर रहा होता। पर स्थिति निराशाजनक है। सच तो यह है कि बुद्धिमत्ता ने समाज को जितना लाभ दिया है उससे कहीं अधिक हानि पहुँचाई है।

चर्चा बुद्धि का महत्त्व घटाने की नहीं भाव संवेदनाओं को उभारने की हो रही है। यह भक्ति तत्व का पुनर्जीवन पुनर्जागरण है। अमृत इसी को कहते हैं। मस्तिष्क में बुद्धि बढ़े, यह प्रयत्न दूसरे लोग कर रहे हैं। हमें चिंतन की उत्कृष्टता और अंत:करण की भावश्रद्धा के संवर्द्धन में लगना है।

-अखण्ड ज्योति, दिसम्बर १९७९, पृष्ठ ४०

२०. प्रतिभाएँ विभिन्न मोर्चों पर लगें— इन दिनों युग परिवर्तन के लिए कई प्रकार की प्रतिभाएँ चाहिए। विद्वानों की आवश्यकता है, जो लोगों को अपने तर्क, प्रमाणों से सोचने की नई पद्धति प्रदान कर सकें। कलाकारों की आवश्यकता है, जो चैतन्य महाप्रभु, मीरा, सूर, कबीर की भावनाओं को इस प्रकार लहरा सकें, जैसे सपेरा साँप को लहराता रहता है। धनवानों की जरूरत है, जो अपने पैसे को विलास में खर्च करने की अपेक्षा सम्राट अशोक की तरह अपना सर्वस्व समय की आवश्यकता पूरी करने के लिए लुटा सकें। राजनीतिज्ञों की जरूरत है, जो गाँधी, रूसो और कार्लमार्क्स, लेनिन की तरह अपने सम्पर्क के प्रजाजनों को ऐसे मार्ग पर चला सकें, जिसकी पहले कभी भी आशा नहीं की गई थी।

भावनाशीलों का क्या कहना? संत सज्जनों ने न जाने कितनों को अपने संपर्क से लोहे जैसे लोगों को पारस की भूमिका निभाते हुए कुछ से कुछ बना दिया।

हमारे वीरभद्र अब यही करेंगे। हमने भी यही किया है। लाखों लोगों की विचारणा और क्रियापद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन किया है और उन्हें गाँधी के सत्याग्रहियों की तरह, विनोबा के भूदानियों की तरह, बुद्ध के परिव्राजकों की तरह अपना सर्वस्व लुटा देने के लिए तैयार कर दिया। प्रज्ञापुत्रों की इतनी बड़ी सेना

हनुमान के अनुयायी वानरों की भूमिका निभाती है।

-अखण्ड ज्योति, अप्रैल १९८५, पृष्ठ ६१

२१. सफलता का आधार संकल्प एवं प्रचण्ड मनोबल— कितने ही महान आन्दोलन संसार में चले और व्यापक बने हैं इनके मूल में एक-दो व्यक्तियों का ही पराक्रम काम करता रहा है। जो अपनी उड़ाई आँधी के साथ अनेक को आसमान तक उड़ा ले गए, वे न तो महाबली योद्धा थे और न साधन सम्पन्न करोड़पति। गाँधी ने जो आँधी चलाई उसके साथ लाखों पत्ते और तिनके जैसी हस्ती वाले गगनचुंबी भूमिकाएँ निभाने लगे। ऐसे आन्दोलन समय-समय पर अपने देश और विदेशों में उठते रहे और व्यापक बनते रहे हैं। इनके मूल में एक-दो मनस्वी लोगों के संकल्प और प्रयत्न ही काम करते रहे हैं। इसीलिए संसार के मनुष्यों में सबसे बड़ा बल मनोबल ही माना गया है। संकल्प और निश्चय तो कितने ही व्यक्ति करते हैं, पर उन पर टिके रहना और अंत तक निर्वाह करना हर किसी का काम नहीं। विरोध, अवरोध सामने आने पर कितने ही हिम्मत हार बैठते हैं और किसी बहाने पीछे लौट पड़ते हैं पर जो हर परिस्थिति से लोहा लेते हुए अपने पैरों अपना रास्ता बनाने और अपने हाथों अपनी नाव खेकर उस पार तक पहुँचते हैं, ऐसे मनस्वी बिरले ही होते हैं। मनोबली ऐसे साहसी का नाम है जो सोच-समझकर कदम उठाता और उसे प्राणपण से पूरा करता है।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९८७, पृष्ठ २२

जाग्रत् आत्माओं को युग निमंत्रण यही है- इन दिनों अनंत अन्तरिक्ष में गूँजने वाले पांचजन्य की प्रतिध्वनि जो सुन सकें, सुनें। जो उसका अनुसरण कर सकें, करें। श्रेय -सौभाग्य और अवसाद-पश्चात्ताप में से एक को चुनने के लिए हमसे से हर कोई पूर्ण स्वतन्त्र है। इस स्वतन्त्रता का उपयोग इन्हीं दिनों करना होगा।

४. वेदना समझें, भूल सुधारें

१. विचारों से जुड़े रहें- खेद की बात है कि गायत्री परिवार का एक विशाल संगठन बना था। पर उसके सदस्यों को अखण्ड ज्योति पढ़ते रहने का महत्त्व हम न समझा सके। फलस्वरूप उनमें से अधिकांश लोग उस दिशा में चल सकने की स्थिति में न आ सके, जो हमारा लक्ष्य था। अब यह निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि उन्हीं को अपने परिवार का परिजन माना जा सकता है और उन्हीं से कुछ आशा रखी जा सकती है, जो अखण्ड ज्योति पढ़ते हैं। जो हमारी वाणी को सुनना नहीं चाहते, जिन्हें हमारे विचारों और प्रेरणाओं की आवश्यकता नहीं, जो हमारे सुझावों और संदेशों का कोई मूल्य नहीं मानते, उन्हें परिजन कहना हमारा एक भ्रममात्र था, जो अब पूरी तरह दूर कर लिया गया है। अपने परिचित लोगों की भारी भीड़ में से हम युग निर्माण जैसे महान कार्य में कुछ सहयोग की आशा उन्हीं से करते हैं, जो कम से कम हमारे विचारों के प्रति सहानुभूति रखते हैं और उन्हें पढ़ने की आवश्यकता अनुभव करते हैं।

-अखण्ड ज्योति, जुलाई १९६२, पृष्ठ ४८

२. संस्कार जगायें, अनुदान पायें—अपने प्रियजनों को सुखी बनाने के लिए हर कुलपति प्रयत्न करता है, हम भी इसी दृष्टि से इन दिनों अपना प्रयत्न तीव्र कर रहे हैं। यदि कुछ ठोस लाभ दिए बिना विदा होना पड़ा, तो अपने प्रिय परिवार के प्रति हमारा उत्तरदायित्व पूरा न हो सकेगा और उसकी लज्जा एवं वेदना हमें देर तक कष्ट देती रहेगी। इस व्यथा से छुटकारा पाने के लिए वर्तमान छटनी पर बहुत जोर दे रहे हैं। जो हमारी बात तो सुन सकते हैं, पर बताए मार्ग पर चलने के लिए तनिक भी तैयार नहीं, उनके साथ उलझे रहने की अपेक्षा अब हमें

ऐसे लोगों को साथ रखना है, जो कुछ काम कर सकने लायक श्रद्धा और आत्मीयता हमारे प्रति उत्पन्न कर चुके हैं। अधिक न सही तो कम से कम इतनी सेवा हम अपने इन प्रिय परिजनों की करेंगे ही कि उनके वर्तमान परिवार सुसंस्कृत बनें और उनकी गोदी में ऐसी उच्च आत्माएँ अवतरित हों, जो उस परिवार को तथा हमारे अंत:करण को प्रसन्नता प्रदान कर सकें।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६६, पृष्ठ ४७

३. नहीं चाहिए संख्यापूरक—जिनकी आस्था दुर्बल है, उनके लिए तिल भर बोझ भी पर्वत जैसा भारी पड़ेगा। ऐसे लोगों से किस प्रकार आशा करें कि वे हमारे प्रयोजन में दो-चार कदम चलने का साथ देंगे जो हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। व्यक्ति और समाज की उत्कृष्टता, सांस्कृतिक एवं भौतिक पुनरुत्थान, भावनात्मक नव-निर्माण आज के युग की महानतम माँग है। प्रबुद्ध व्यक्तियों के लिए इन उत्तरदायित्वों से विमुख होना या इनकार कर सकना अशक्य है। हमें स्वयं इसी दिशा में जिस सत्ता ने बलपूर्वक लगाया है, वह अन्यान्य भावनाशील लोगों के अंत:करण में भी वैसी ही प्रेरणा कर रही है और वे सच्चे आध्यात्मिक व्यक्तियों की तरह इसके लिए कटिबद्ध हो रहे हैं। पर जिन्हें यह सब कुछ व्यर्थ दीखता है, जिन्हें इतने महत्त्वपूर्ण कार्य में कोई आकर्षण, कोई उत्साह, कोई साहस उत्पन्न नहीं हो रहा है, उनके संबंध में हमें निराशा हो सकती है।

अपनी तपश्चर्या और ईमानदारी में कहीं कोई कमी ही होगी, जिसके कारण जिन व्यक्तियों के साथ पिछले ढेरों वर्षों से संबंध बनाया, उनमें कोई आध्यात्मिक साहस उत्पन्न न हो सका। वह भजन किस काम का, जिसके फलस्वरूप आत्मनिर्माण एवं परमार्थ के लिए उत्साह उत्पन्न न हो। किन्हीं को हमने भजन में लगा भी दिया है, पर उनमें भजन का प्रभाव बताने वाले उपरोक्त दो लक्षण उत्पन्न न हुए हों, तो हम कैसे मानें कि उन्हें सार्थक भजन करने की प्रक्रिया समझाई जा सकी? हमारा परिवार संगठन तभी सफल कहा जा सकता था, जब उसमें वे

सम्मिलित व्यक्ति उत्कृष्टता और आदर्शवादिता की कसौटी पर खरे सिद्ध होते चलते। अन्यथा संख्यावृद्धि की विडंबना से झूठा मन बहलाव करने से क्या कुछ बनेगा?

-अखण्ड ज्योति, अक्टूबर १९६६, पृष्ठ ४७

४. हमारी साधना की सार्थकता क्या रहेगी?—हमारा परिवार यदि व्यक्तिगत सम्पर्क की परिधि तक ही सीमित रहा और हमारे मिशन के प्रति उसमें आवश्यक निष्ठा उत्पन्न न हुई, तो एक प्रकार से हमारे प्रयोजनों का मटियामेट हो जाएगा। भीड़ बढ़ा लेना और जन-सम्पर्क फैला लेना, मिलनसारी या प्रतिभा का चमत्कार हो सकता है, पर उस समूह में कोई जीवट न रही, तो बालू की दीवार की तरह उस भीड़ को बिखरने में भी देर न लगेगी और यदि कहीं ऐसा हो गया, तो हमारी जीवन-साधना की सार्थकता क्या रह जाएगी?

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७०, पृष्ठ ५५, ५६

५. न स्वयं को भूलें, न भटकें—निस्संदेह अखण्ड ज्योति परिवार में असाधारण उच्च संस्कारों से संबंधित आत्माएँ हैं। उन्हें बड़े प्रयास और ढूँढ़-खोज के साथ एकत्रित किया गया है। इन संस्कारवान् आत्माओं की इस परिवर्तन वेला में अति महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ थीं। उन्हें नल-नील, अंगद और हनुमान की तरह; अर्जुन, प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, समर्थ गुरु रामदास की तरह ईश्वरीय आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बढ़-चढ़कर शौर्य, साहस और त्याग-बलिदान का परिचय देना चाहिए था, पर यह देखते हुए दु:ख होता है कि जिन्होंने हमारे साथ किसी समय तप और त्याग की दोनों ही क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की थीं, वे अब नर पशुओं की तरह वासना और तृष्णा में लिप्त होकर शोक-संताप की जलन में जल रहे हैं, किन्तु तथ्य और प्रयोजन की ओर ध्यान नहीं देते।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६९, पृष्ठ ६, ७

६. .. तो गुरुसत्ता को पीड़ा होगी— हमारे साथी, सहचर जो सभी हमारे दिन-रात के सहचर थे, कदम-से-कदम मिलाकर चलते

थे, अपूर्णता को पूर्णता में परिवर्तित करने के लिए अपनी सतत साधना में संलग्न थे, महान लक्ष्य की पूर्ति ही जिनकी एकमात्र आकांक्षा थी, लोभ, मोह के बंधनों को जिनने काफी ढीला कर लिया था, जिन पर हमें भारी हर्ष और गर्व था, वे अब न जाने किससे शापित होकर नरक में जा गिरे और अपनी पूर्व जन्मों की स्थिति, परिस्थिति एवं प्रवृत्ति को बुरी तरह भूल गए। जिसके जीवन दीप अपने आप में प्रकाशवान थे, दूसरों के प्रकाशार्थ थे, अब वे लगभग बुझ गए। बत्ती के अग्रभाग पर जहाँ दीप्तिमान ज्योति जलती रहती थी, वहाँ अब कालिमा का अवशेष मात्र चिह्नित है।

उच्च आत्माएँ जो अपने को प्रकाशवान कर चुकीं और जिनके प्रकाश का लाभ सुदूर क्षेत्रों में व्याप्त होने की आशा थी वे बुझ जाएँ, तो यह एक बड़ी दुर्घटना एवं भयंकर सार्वजनिक हानि की बात है। लोभ-मोह के जाल-जंजाल में जकड़ा हुआ जड़ जीवन नर-पशुओं के लिए क्षम्य हो सकता है। जिनकी मनुष्यता जाग गई उनके लिए वह स्तर ऐसे ही उपहासास्पद है, जैसे कि कोई बड़ी आयु का व्यक्ति बालकों जैसे खिलौने से खेले, घुटनों के बल चले और वैसी ही बोली बोले। प्रबुद्ध आत्माएँ धर्म और ब्रह्मज्ञान को वाचालता नहीं दिखाती फिरतीं, वे उन आदर्शों को जीवनक्रम में उतारती हैं। वेदान्त जिनकी जीभ तक सीमित रह गया, व्यावहारिक जीवन में न उतरा, समझना चाहिए वे प्रगति के पथ पर न बैठ सके, विडंबना के दलदल में फँस गए।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६९, पृष्ठ ३५

७. भूल कहाँ हुई ?—अपना परिवार तो हमने इतना बड़ा इकट्ठा कर लिया पर उन्हें कुछ मोटी बातें समझा सकने में सफल न हो सके। हम उनके मन पर यह छाप न छोड़ सके कि उत्कृष्टता और आदर्शवादिता की गतिविधियों को अपनाना किसी प्रकार भी घाटे का सौदा नहीं है। यह प्रक्रिया स्वास्थ्य सुधारती है, दीर्घजीवन प्रदान करती है, दांपत्य प्रेम में भारी उल्लास भर देती है, बच्चे सुसंस्कृत बनते हैं। पैसे की तंगी नहीं रहती, मनोविकारों और उद्वेगों में नही जलना पड़ता, यश मिलता है,

सच्चे और सज्जन मित्र मिलते हैं और उनकी मित्रता निभती है। दूसरों का सहयोग मिलता है, प्रगति का पथ प्रशस्त होता है, असफलताएँ क्षुब्ध नहीं करती, चित्त में प्रसन्नता उमड़ती रहती है, आत्म-संतोष मिलता है और ईश्वर के अनुग्रह एवं सान्निध्य का हर घड़ी अनुभव होता है। और भी असंख्य लाभ हैं।

हानि केवल इतनी ही है कि अपनी मूढ़ मान्यताओं, अंधपरंपराओं और बुरी आदतों से हाथ धोना पड़ता है। लोभ-मोह की जलन और वासना, तृष्णा की उद्विग्नता भी कम हो जाती है। दुष्टता भरा अंहकार घट जाता है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी हानि नहीं है। लाभ इतना अधिक है कि सामान्य मनुष्य महामानवों की श्रेणी में जा पहुँचता है और उपेक्षणीय व्यक्तित्व सभी के सिर आँखों पर जा बिराजता है।

यदि इतनी मोटी बात और अक्षरश: तथ्यपूर्ण उस सचाई को हम परिजनों को समझा सके होते, तो उनकी तथाकथित आध्यात्मिकता पूजा-पाठ और कथा-वार्ता तक सीमित होकर न रह गई होती। उसे जीवन व्यवहार में भी स्थान मिला होता और उनका स्वरूप वैसा न रहता जैसा आज है। वे अपेक्षाकृत बहुत सुखी और संतुष्ट होते और समाज को उनके व्यक्तित्व से भारी प्रकाश एवं बल मिल रहा होता। ईश्वर जाने कि (१) इस युग का अंधकार उतना सघन है अथवा (२) परिजनों का विवेक एवं शौर्य मर गया अथवा (३) अपने समझाने वाली क्षमता इतनी न्यून है कि उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

तीनों में से जो भी कारण हो अथवा तीनों ही कारण हों उपाय तो करना ही होगा। परिजनों को मोह-शोक में डूबे हुए नहीं छोड़ सकते। वे अपनी अच्छी स्थिति का गर्व करते रहें। हमारी दृष्टि में आत्मकल्याण की साधना और लोकमंगल की प्रवृत्ति से उदासीन व्यक्ति की आत्मिक स्थिति अति दयनीय है। अपने इन पूर्वजों, स्वजनों के उद्धार के लिए हम भागीरथ तप करेंगें और इसी उर्वर क्षेत्र में हरीतिमा उगाएँगे जिससे सारा उपवन सुशोभित हो उठे।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६९, पृष्ठ ३८, ३९

८. अपनों को उबारने के प्रयास—हम बहुत भोले जरूर हैं पर इतने मूर्ख नहीं जो वस्तुस्थिति को समझते न हों। आत्मकल्याण और लोकनिर्माण की सम्मिश्रित कार्य पद्धति को भी जीवन में कुछ स्थान देने की बात हम कहते हैं और उसे यों ही मजाक में उड़ा दिया जाता है तो हमें भारी कष्ट होता है। इसे हम किसी की मजबूरी नहीं मान सकते। इसमें विशुद्ध उपेक्षा, अन्यमनस्कता और अश्रद्धा छिपी हुई है। यह गलत है। किसी समय वे बहुत आगे बढ़े-चढ़े व्यक्ति नगण्य से सामयिक कर्त्तव्य की ऐसी उपेक्षा करें हमें यह बहुत कष्टकारक लगता है। लगभग वैसा ही अनुभव होता है, जैसा भागीरथ को अपने पूर्वजों की दयनीय स्थिति के बारे में होता था।

कोई घी से रोटी खाता है या रेशमी कपड़ा पहनता है, यह देखकर हम उसे प्रसन्नचित्त नहीं मान सकते। आत्मिक दृष्टि से जो दरिद्र है, उसे असंख्य प्रकार की जलन जलाती रहेगी और वह नरक का भी अनुभव करता रहेगा। इस स्थिति में हम अपने स्वजनों को नहीं रहने दे सकते, हम उन्हें प्यार करते हैं, मित्र मानते हैं, इसलिए हमें अथक प्रयत्न करना होगा कि उन्हें ऊँचा उठाएँ और समुन्नत करें।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६९, पृष्ठ ३९

९. जो हो, हम एकरस, एकनिष्ठ भाव से अपने मार्ग पर चलते हुए लंबी मंजिल पूरी कर चुके। विराम का अवसर आया तो यह उत्कण्ठा तीव्र हो चली कि हमारा परिवार घटिया स्तर का जीवनयापन करने का कलंक न ओढ़े रहे। प्रकारांतर से यह लांछन अपने ऊपर भी आता है। हम किस बूते पर अपना सिर गर्व से ऊँचा कर सकेंगे और किस मुख से यह कह सकेंगे कि अपने पीछे कुछ ऐसा छोड़कर आए, जिसे देखकर लोग उसके संचालक का अनुमान लगा सकें। ईश्वर की महान कृतियों को देखकर ही उसकी गरिमा का अनुमान लगाया जाता है। हमारा कर्तृत्व पोला था या ठोस, यह अनुमान उन लोगों की परख करके लगाया जाएगा, जो हमारे श्रद्धालु एवं अनुयायी कहे जाते हैं। यदि वे वाचालता भर के प्रशंसक और

दण्डवत, प्रणाम भर के श्रद्धालु रहे, तो माना जाएगा कि सब कुछ पोला रहा।

असलियत कर्म में सन्निहित है। वास्तविकता की परख क्रिया से होती है। यदि अपने परिवार की क्रियापद्धति का स्तर दूसरे अन्य नर-पशुओं जैसा ही बना रहा तो हमें स्वयं अपने श्रम और विश्वास की निरर्थकता पर कष्ट होगा और लोगों की दृष्टि में उपहासास्पद बनना पड़ेगा। यह अवसर न आए, इसलिए हम इन दिनों बहुत जोर देकर अपने उद्‌बोधन का स्वर तीखा करते चले जा रहे हैं और गतिविधियों में गर्मी ला रहे हैं, ताकि यदि कुछ सजीव लोग अपने साथियों में रहे हों तो आगे आएँ और मृत मूर्च्छित अपनी माँद में जाकर चुपचाप पड़ जाएँ। बात बहुत, काम कुछ नहीं वाली विडंबना का तो अब अंत होना ही चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, नवम्बर १९६९, पृष्ठ ६२

१०. गुरुसत्ता की आकांक्षा- हर बाप चाहता है कि उसका बेटा उसकी अपेक्षा अधिक बड़ा आदमी बने। हर माँ चाहती है कि उसकी बेटी उसकी तुलना में अधिक सुखी रहे। हमारी आंतरिक भावना ही नहीं, चेष्टा भी यही है कि प्रज्ञा-परिजनों को वह सुयोग मिले, जिसके आधार पर वे महामानवों में गिने जा सकने की स्थिति तक पहुँचें और इतिहास के पृष्ठों पर अपने अंतिम चिह्न छोड़ जाएँ।

एक चीज हमारे मन में है। उसे लेने वाला कोई हो, ऐसा जी ललचाता है। गाय थनों में दूध भरे फिरती है और उन्हें खाली करने के लिए बच्चे को रंभा-रंभाकर ढूँढ़ती और पुकारती है। हमारे पास कुछ ऐसा भी है, जो उच्चस्तरीय है और हमारे मार्गदर्शक ने समूची अनुकम्पा समेट कर हमें दी है। उसे साथ लेकर नहीं मरना चाहते, वरन् यह चाहते हैं कि उस पारसमणि का प्रियजन भी लाभ उठाएँ, जो हमें सौभाग्यवश मिली है। यह स्वाति बूँद की तरह बरसी और नगण्य सी सीप के पेट से बहुमूल्य मोती उगाने में समर्थ हुई है।

-अखण्ड ज्योति, जनवरी १९८६, पृष्ठ ५६

११. खोखलापन घातक है—अब ऐसा लगने लगा है कि जो विशाल भीड़ हमें चारों ओर से घेरे रही है, घेरे रहती है उसके कम ही लोग उस स्तर के हैं, जिन्हें हमारे प्रयासों के प्रति सच्ची सहानुभूति हो। अधिकांश लोग निहित स्वार्थ वाले हैं, जो अपने किसी प्रयोजन विशेष में सहायता प्राप्त करने के लिए हमारा उपयोग भर करना चाहते हैं। उनकी मनोभूमि उस स्तर तक विकसित नहीं हो सकी है कि वे हमारे जीवनोद्देश्य और क्रियाकलाप के पीछे काम करके दूरगामी प्रयोजन की उपयोगिता समझें और उसके लिए कुछ सहयोग-अनुदान देने की हिम्मत करें। मनुष्य, मनुष्य से सहायता प्राप्त करे—यह उचित है, पर केवल उतने तक ही सीमित बनकर रह जाए, यह बुरा है।

भीड़ में क्या बना है। सोमवती अमावस्या को गंगा तट पर स्नान करने वाले और रामलीला में रावण-वध के उत्सव में उपस्थित रहने वाले तथाकथित धार्मिक लोगों की भारी भीड़ जमा होती है, पर उस जनसमूह के पीछे कोई लक्ष्य नहीं होता। अतएव उस एकत्रीकरण का न व्यक्ति को लाभ मिलता है और न समाज को। वह जमघट विडंबना मात्र बनकर रह जाता है। सोचते हैं अपने साथ जुड़ा हुआ लाखों मनुष्यों का जनसमूह कहीं ऐसा ही खोखला न हो, जो हमारे पीठ फेरते ही मुँह फेर ले और जिस प्रयोजन को हम विश्वव्यापी बनाने के लिए अपने को तिल-तिल गलाते रहे हैं, वे उसकी ओर मुड़कर भी न देखें। यदि ऐसा हुआ, तो उन रंगीन सपनों का क्या होगा, जो हमने बड़ी साध के साथ जीवन भर सजाए और सँजोए हैं ?

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७०, पृष्ठ ५६

१२. सदुपयोग क्षमता सम्पन्न बनें—आज धन, शिक्षा और साधनों की प्रचुर मात्रा में अभिवृद्धि हुई है। यदि उसका सदुपयोग संभव हुआ होता, तो इतनी साधन संपन्न जनता स्वर्गीय सुख का आनंद ले रही होती, पर हो ठीक उलटा रहा है। बढ़ती हुई सम्पदा विपत्ति का कारण ही बनती चली जा रही है और मानव जीवन का हर पक्ष, समाज का हर क्षेत्र इतना कलुषित हो रहा है कि घुटन में प्राण ही निकल रहे हैं। बाहर

जितना ही सौंदर्य, भीतर उतनी ही कुरूपता। बाहर जितना वैभव, भीतर उतना ही दारिद्र्य। बाहर जितना ज्ञान, भीतर उतना ही अंधकार। इतना छद्म और इतना पाखण्ड शायद ही इतिहास में कभी आया हो। मानवीय महानता तो एक प्रकार से पलायन ही करती चली जा रही है। उसके स्थान पर जाल में फँसाने का अहेरी धंधा पनप रहा है। अब नैतिकता की, मानवता की कसौटी पर खरे सिद्ध होने वाले लोग दीपक लेकर ही तलाश किए जा सकते हैं।

-अखण्ड ज्योति, मई १९७२, पृष्ठ १

१३. प्रतिभाओं का अध:पतन ही मुख्य समस्या—आज बारीकी से देखा जाए तो राजतन्त्र, धर्मतन्त्र, समाजतन्त्र, अर्थतन्त्र, बुद्धितन्त्र, कलातन्त्र के क्षेत्रों में नेतृत्व करने वाली प्रतिभाएँ बुरी तरह अपने कर्त्तव्य से च्युत हो रही हैं। मुख से बकवास करते रहने का कोई मूल्य नहीं, प्रभाव पड़ता है आस्थाओं का और कृतियों का। वे छिपाए छिपती भी नहीं। यदि उनका स्वर अवांछनीय है तो मोटे तौर से कोई जाने या न जाने पर सूक्ष्म जगत् में उनका भारी प्रभाव पड़ेगा। समर्थ प्रतिभाएँ जहाँ अपने वर्चस्व से लोकमानस को अपने समान उत्कृष्ट बना सकती हैं, वहाँ उनकी निकृष्टता व्यापक रूप से अवांछनीयता का भी विस्तार कर सकती है। सर्वसाधारण की गतिविधियों में गिरावट आ जाना उतना चिंताजनक नहीं जितना प्रतिभाओं का नैतिक अध:पतन। आज यही विश्वसंकट का प्रधान केन्द्र बिन्दु है। यही क्रम चलता रहा, तो समस्त संसार के लिए आत्मघाती संकट कुछ ही दिनों में प्रस्तुत हो सकता है।

-अखण्ड ज्योति मई १९७२, पृष्ठ ३०

१४. विनोबा जी कहते रहते थे कि किसी संस्था को तभी तक जीवित रहना चाहिए जब तक उसके कार्यकर्त्ता निस्पृह और सच्चे सेवाभावी हों। वे न रहें या घट जाएँ तो उन्हें विलासी प्रलोभन के सहारे रोके रहना व्यर्थ है। इस कसौटी पर अखण्ड ज्योति के प्रज्ञा परिजन अब तक निरन्तर खरे उतरते रहे हैं और उनके सेवा कार्यों से सन्तुष्ट जनता उन्हें इतना सम्मान और सहयोग प्रदान करती है कि उनकी ब्राह्मणोचित

निर्वाह आवश्यकताएँ निरन्तर पूरी होती रहें। साथ ही इस परमार्थी वर्ग की संख्या भी बढ़ती रहती है। आमतौर से सादगी का ब्राह्मणोचित जीवन लोगों को रास नहीं आता। सभी आलसी और विलासी रहना चाहते हैं।

समय प्रभाव के सर्वथा विपरीत शक्ति केन्द्र के साथ जुड़े हुए और निजी जीवन में बढ़-चढ़कर आदर्श उपस्थिति करने वाले सदगृहस्थ घर रहकर भी पुरातन काल के ब्राह्मणों जैसी जीवनचर्या अपनाते हैं। जो गड़बड़ करते हैं, मार्ग भ्रष्ट होते हैं वे मार्ग से हट जाते हैं या हटा दिए जाते हैं। जनसमुदाय ऐसे व्यक्तियों को किसी भी स्थिति में बरदाश्त नहीं करता व लोकेषणा में उलझा व्यक्ति स्वयं अपने पैरों कुल्हाड़ी मारकर ग्लानि भरा जीवन जीता देखा जाता है।

-अखण्ड ज्योति, जनवरी १९८८, पृष्ठ ५७

सबसे बड़ा भार हमारे ऊपर उन भावभरी सद्भावनाओं का है, जिन्हें ज्ञात और अज्ञात व्यक्तियों ने हमारे ऊपर समय-समय पर बरसाया है। सोच नहीं पाते कि इनका बदला कैसे चुकाया जाय। ऋण हमारे ऊपर बहुत है, जिसका असीम प्यार, जितनी आत्माओं का, कितनी ही आत्मीयता और सौजन्यता से हमने पाया है कि उसकी स्मृति से जहाँ एक बार रोम-रोम पुलकित हो जाता है, वहाँ दूसरी ही क्षण यह सोचते हैं कि उनका बदला कैसे चुकाया जाय। प्रेम का प्रतिपादन भी तो दिया जाता है, लेकर के ही नहीं चला जाना चाहिए। जिससे पाया है, उसे देना भी तो चाहिए। अपना नन्हा-सा कलेवर, नन्हा-सा दिल, नन्हा-सा प्यार, किस-किस का कितना प्रतिदान चुका सकता संभव होगा, यह विचार आते ही चित्त बहुत भारी और बहुत उदास हो जाता है।

- पूज्य गुरुदेव

५. कसौटी पर खरे उतरें

१. जरूरत है जीवट वालों की—अब युग की रचना के लिए ऐसे व्यक्तित्वों की ही आवश्यकता है जो वाचालता और प्रोपेगैंडा से दूर रह कर अपने जीवनों को प्रखर एवं तेजस्वी बना कर अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करें और जिस तरह चंदन का वृक्ष आस-पास के पेड़ों को सुगंधित कर देता है, उसी प्रकार अपनी उत्कृष्टता से अपना समीपवर्ती वातावरण भी सुरभित कर सकें। अपने प्रकाश से अनेक को प्रकाशवान् कर सकें।

धर्म को आचरण में लाने के लिए निस्संदेह बड़े साहस और बड़े विवेक की आवश्यकता होती है। कठिनाइयों का मुकाबला करते हुए सदुद्देश्य की ओर धैर्य और निष्ठापूर्वक बढ़ते चलना मनस्वी लोगों का काम है। ओछे और कायर मनुष्य दस-पाँच कदम चलकर ही लड़खड़ा जाते हैं। किसी के द्वारा आवेश या उत्साह उत्पन्न किए जाने पर थोड़े समय श्रेष्ठता के मार्ग पर चलते हैं, पर जैसे ही आलस्य प्रलोभन या कठिनाई का छोटा-मोटा अवसर आया कि बालू की भीत की तरह औंधे मुँह गिर पड़ते हैं। आदर्शवाद पर चलने का मनोभाव देखते-देखते अस्त-व्यस्त हो जाता है।

ऐसे ओछे लोग अपने को न तो विकसित कर सकते हैं और न शांतिपूर्ण सज्जनता की जिंदगी ही जी सकते हैं। फिर इनसे युग निर्माण के उपयुक्त उत्कृष्ट चरित्र उत्पन्न करने की आशा कैसे की जाए? आदर्श व्यक्तित्वों के बिना दिव्य समाज की भव्य रचना का स्वप्न साकार कैसे होगा? गाल बजाने वाले 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' लोगों द्वारा यह कर्म यदि संभव होता, तो वह अब से बहुत पहले ही सम्पन्न हो चुका होता। जरूरत उन लोगों की है जो आध्यात्मिक आदर्शों की

प्राप्ति को जीवन की सबसे बड़ी सफलता अनुभव करें और अपनी आस्था की सचाई प्रमाणित करने के लिए बड़ी से बड़ी परीक्षा का उत्साहपूर्ण स्वागत करें।

–अखण्ड ज्योति, मार्च १९६४, पृष्ठ ५८

२. ईसा मसीह अपने शिष्यों से कहा करते थे कि जो सच्चा ईश्वर-भक्त है, वह अपना क्रूस (मौत) अपने कंधे पर रखकर मेरे पीछे-पीछे आए। संसार के प्रायः सभी ईश्वर-भक्तों, धर्म-परायणों, महामानवों और सत्पुरुषों को अपनी मनोभूमि को वास्तविकता की अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी है। जो ईंट भट्टी में पकने से पहले इनकार कर दे वह पानी की बूँद पड़ते ही गल जाने वाली निकम्मी चीज बनी रहेगी। मजबूती प्राप्त करने के लिए तो आग को अपनाना ही होगा। कच्चा लोहा भट्टियों में ही तो फौलाद बनता है। ऊबड़-खाबड़, ओछे और घिनौने, स्वार्थी और तृष्णा-वासना ग्रसित मनुष्य को आत्म-कल्याण के पथ पर अग्रसर होने के लिए त्याग और बलिदान का मार्ग सदा ही अपनाना पड़ा है। इसका और कोई विकल्प न तो था और न आगे हो सकता है।

–अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९६६, पृष्ठ ४४

३. अपने प्रिय परिजनों को आत्मिक प्रगति के पथ पर क्रमशः अग्रसर करना हमारा लक्ष्य रहा है। प्रगति की मंजिलें जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगी, ऊँची उठेंगी वैसे-वैसे ही शर्तें कड़ी होती चली जाएँगी। इसमें हमारा दोष नहीं है, यह अनादि परंपरा है। यदि एक-दो माला जपने, हनुमान चालीसा पढ़ने, दस-पाँच आहुतियाँ दे लेने और थोड़ी-सी पूजा-पाठ का कर्मकाण्ड निपटा लेने से आत्मिक-प्रगति का लक्ष्य प्राप्त हो सकना संभव रहा होता, तो हम अपने प्रियजनों को कदापि अधिकाधिक कष्टसाध्य वजन उठाने के लिए अनुरोध न करते। सस्ते में अधिक मूल्य की चीज मिल सकी होती, तो हमसे अधिक और कोई प्रसन्न न हुआ होता। छुटपुट कर्मकाण्डों से ही आत्मा की प्राप्ति हो जाया करे, तो कष्टसाध्य तपस्वी-जीवन में प्रवेश करने की आवश्यकता ही क्या रह जाए?

हमें पूरे विश्वास के साथ यह मान लेना चाहिए कि कीमती चीजें उचित मूल्य चुकाने पर ही मिलती हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, यश, धन आदि सांसारिक विभूतियाँ उपार्जित करने में लोगों को कितना घोर प्रयत्न और कितना साहस करना पड़ता है, फिर मानव जीवन की सर्वोपरि सार्थकता, सबसे बड़ा-चढ़ा लाभ, प्राप्त करने के लिए तनिक भी कठिनाई का सामना न करना पड़े, ऐसा किसी भी प्रकार संभव नहीं। जो सस्ते कर्मकांडों के सहारे स्वर्ग, मुक्ति एवं आत्मिक प्रगति की आशा लगाए बैठे रहते हैं, उन्हें वज्र मूर्खों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझना चाहिए।

–अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९६६, पृष्ठ ४५

४. उपयुक्त पात्रों की खोज— युग परिवर्तन के उपयुक्त व्यक्तियों तथा परिस्थितियों का अभाव दूर हो सके। हमारे गुरुदेव ने हमारी भौतिक सुविधाओं को एक-एक करके घटाया है और त्याग-बलिदान की आग में अधिकाधिक तपाया है। हमारा अगला कदम आगे और भी अधिक कठोरतापूर्ण है। हमें अपने इस सौभाग्य पर अत्यधिक हर्ष और संतोष है, क्योंकि हमें आत्मिक प्रगति की सुनिश्चित क्रम व्यवस्था का पता है। अनादिकाल से प्रत्येक आत्मिक स्तर पर ऊँचा उठने वाले को यही रीति-नीति अपनानी पड़ी है। हमारे लिए भी और कोई नया मार्ग कैसे हो सकता था?

प्रिय परिजनों के लिए या उनकी आत्मिक प्रगति के लिए इसी राजमार्ग पर चलने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। गांधी जिन्हें प्यार करते थे उन्हें जेल भिजवाते थे। बुद्ध जिन्हें प्यार करते थे, उन्हें प्रव्रज्या देते थे। हम भी परिजनों को असुविधाएँ ही दे सकते हैं। ऊँचा उठने के लिए और कोई सरल मार्ग यदि हमारे हाथ में रहा होता, तो उसे बताते हुए प्रसन्नता ही अनुभव करते, पर सस्ते मूल्य पर ऊँची उपलब्धियाँ पाने का जब कोई विधान ईश्वर ने रखा ही नहीं तो हमें विवशता ही व्यक्त करनी पड़ती है। कुछ भी त्याग न करने पर भी आत्म लाभ हो सकने का झूठा आश्वासन दे सकना भी तो हमसे बन नहीं पड़ता।

–अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९६६, पृष्ठ ४६

५. हमें अपनी क्रिया पद्धति अगले दिनों समाप्त करनी है, अपने उत्तरदायित्व मजबूत कंधों पर सौंपने हैं। हमारी समस्त गतिविधियों का केंद्र उत्कृष्ट व्यक्ति और उत्कृष्ट समाज की रचना है। इस प्रयोजन में जो लोग हमारा साथ दे सकते हों, वस्तुत: वे ही हमारे सच्चे आत्मीय हो सकते हैं।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९६६, पृष्ठ ४६

६. जो खुद ही कुछ थोड़ा तप, त्याग कर सकने में असमर्थ होंगे, वे आखिर दूसरों से कुछ त्याग-बलिदान करने की बात किस मुँह से कह सकेंगे? अब गाल बजाने वालों का जमाना चला गया। बढ़-चढ़ कर बोलने और लिखने से जनता का मनोरंजन मात्र ही हो सकता है। प्रभाव उनका पड़ता है, जो कुछ स्वयं करते हैं। जन मानस को त्याग-बलिदान की प्रेरणा दे सकने की आवश्यकता केवल वे ही लोग पूरी कर सकेंगे जो पहले अपने जीवन में वैसा कुछ कर सकने की अपनी प्रामाणिकता सिद्ध कर चुके होंगे।

-अखण्ड ज्योति, नवम्बर १९६६, पृष्ठ ४७

७. कभी हमने पूर्व जन्मों के सत् संस्कार वालों और अपने साथी सहचरों को बड़े प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़ा था और 'अखण्ड ज्योति परिवार' की शृंखला में गूँथकर एक सुंदर गुलदस्ता तैयार किया था। मंशा थी इन्हें देवता के चरणों में चढ़ाएँगे। पर अब जब बारीकी से नजर डालते हैं कि कभी के अति सुरम्य पुष्प अब परिस्थितियों ने बुरी तरह विकृत कर दिए हैं। वे अपनी कोमलता, शोभा और सुगंध तीनों ही खोकर बुरी तरह इतना मुरझा गए कि हिलाते-डुलाते हैं, तो भी सजीवता नहीं आती उलटी पंखुड़ियाँ झर जाती हैं।

ऐसे पुष्पों को फेंकना तो नहीं है, क्योंकि मूल संस्कार जब तक विद्यमान हैं, तब तक यह आशा भी है कि कभी समय आने पर इनका भी कुछ सदुपयोग सम्भव होगा, किसी औषधि में यह मुरझाए फूल भी कभी काम आएँगे। पर आज तो देव वेदी पर चढ़ाए जाने योग्य सुरभित पुष्पों की आवश्यकता है, सो उन्हीं की छाँट करनी पड़ रही है। अभी आज तो सजीवता ही अभीष्ट है और वस्तुस्थिति की परख तो कहने-

सुनने, देखने-मानने से नहीं वरन कसौटी पर कसने से ही होती है। सो परिवार की सजीवता-निर्जीवता, श्रद्धा-अश्रद्धा, आत्मीयता, विडम्बना के अंश परखने के लिए यह वर्तमान प्रक्रिया प्रस्तुत की है।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६९, पृष्ठ १०, ११

८. **अगल चरण और कठिन होंगे**—हम भाग्यशाली हैं, जो सस्ते में निपट रहे हैं। असली काम और बढ़े-चढ़े त्याग-बलिदान अगले लोगों को करने पड़ेंगे। अपने जिम्मे ज्ञानयज्ञ का समिधादान और आज्याहुति होम मात्र प्रथम चरण आया है। आकाश छूने वाली लपटों में आहुतियाँ अगले लोग देंगे। हम प्रचार और प्रसार की नगण्य जैसी प्रक्रियाएँ पूरी करके सस्ते में छूट रहे हैं। रचनात्मक और संघर्षात्मक अभियानों का बोझ तो अगले लोगों पर पड़ेगा।

कोई प्रबुद्ध व्यक्ति नवनिर्माण के इस महाभारत में भागीदार बने बिना बच नहीं सकता। इस स्तर के लोग कृपणता बरतें तो उन्हें बहुत मँहगी पड़ेगी। लड़ाई के मैदान से भाग खड़े होने वाले भगोड़े सैनिकों की जो दुर्दशा होती है, अपनी भी उससे कम न होगी। चिरकाल बाद युग परिवर्तन की पुनरावृत्ति हो रही है। रिजर्व फोर्स के सैनिक मुद्दतों से मौज-मजा करते रहे, कठिन प्रसंग सामने आया तो कतराने लगे, यह अनुचित है। परिजन एकांत में बैठकर अपनी वस्तुस्थिति पर विचार करें, वे अन्न कीट और भोग कीटों की पंक्ति में बैठने के लिए नहीं जन्मे हैं। उनके पास जो आध्यात्मिक सम्पदा है, वह निष्प्रयोजन नहीं है। अब उसे अभीष्ट विनियोग में प्रयुक्त किए जाने का समय आ गया, सो उसके लिए अग्रसर होना ही चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९६९, पृष्ठ ६५

९. कितने व्यक्ति कहते रहते हैं कि हम आपके साथ हिमालय चलेंगे। उनसे यही कहना है कि वे आदर्शों के हिमालय पर उसी तरह चढ़ें जिस तरह हम जीवन भर चढ़ते रहे। तपश्चर्या का मार्ग अति कठिन है। हमारी हिमालय यात्रा कश्मीर की सैर नहीं है जिसका मजा लूटने हर कोई बिस्तर बाँधकर चल दे। उसकी पात्रता उसी में हो

सकती है जिसने आदर्शों के हिमालय पर चढ़ने की प्राथमिक पात्रता एकत्रित कर ली। सो हम अपने हर अनुयायी से अनुरोध करते रहे हैं और अब अधिक सजीव शब्दों में अनुरोध करते हैं कि वे बड़प्पन की आकांक्षा को बदलकर महानता की आराधना शुरू कर दें।

यह युग परिवर्तन का शुभारंभ है जो हमारे परिजनों को तो आरंभ कर ही देना चाहिए। 'हम बदलेंगे युग बदलेगा' का नारा हमें अपने व्यक्तिगत जीवन की विचार पद्धति और कार्य प्रणाली में आमूल चूल परिवर्तन प्रस्तुत करके सार्थक बनाना चाहिए। निस्संदेह अपने परिवार में इस प्रकार का बदलाव यदि आ जाए तो फिर कोई शक्ति युग परिवर्तन एवं नव निर्माण को सफल बनाने में बाधक न हो सकेगी।

-अखण्ड ज्योति, जून १९७१, पृष्ठ ५६

१०. संगठित अभियानों को नष्ट करने के लिए कार्यकर्त्ताओं में फूट डालने, बदनाम करने, बल प्रयोग से आतंकित करने, जैसे प्रयत्न सर्वत्र हुए हैं। ऐसा क्यों होता है यह विचारणीय है। सुधारक पक्ष को अवरोधों का सामना करने पर उनकी हिम्मत टूट जाने, साधनों के अभाव से प्रगति क्रम शिथिल या समाप्त हो जाने जैसे प्रत्यक्ष खतरे तो हैं, किन्तु परोक्ष रूप से इसके लाभ भी बहुत हैं। व्यक्ति की श्रद्धा एवं निष्ठा कितनी सच्ची और कितनी ऊँची है इसका पता इसी कसौटी पर कसने से लगता है कि आदर्शों का निर्वाह कितनी कठिनाई सहन करने तक किया जाता रहा। अग्नि में तपाए जाने और कसौटी पर कसे जाने से कम में, सोने के खरे-खोटे होने का पता चलता ही नहीं। आदर्शों के लिए बलिदान से ही महामानवों की अंत:श्रद्धा परखी जाती है और उसी अनुपात से उनकी प्रामाणिकता को लोकमान्यता मिलती है। जिनको कोई कठिनाई नहीं सहनी पड़ी, ऐसे सस्ते नेता सदा संदेह और आशंका का विषय बने रहते हैं। श्रद्धा और सहायता किसी पर तभी बरसती है जब वह अपनी निष्ठा का प्रभाव प्रतिकूलताओं से टकरा कर प्रस्तुत करता है।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७९, पृष्ठ ५३

६. संगठन का स्वरूप

१. औंधे-सीधे लोगों का, भानुमती का कुनबा इकट्ठा करके कोई संगठन बना लिया जाए तो ठहरता कहाँ है? जिन लोगों की दृष्टि में विचारों का कोई मूल्य या महत्त्व नहीं, वे किसी कार्य में देर तक कब ठहरने वाले हैं ? जो लोग अखण्ड ज्योति नहीं मँगा सके, जो गायत्री साहित्य नहीं पढ़ सके, वे किसी समय बड़े भारी श्रद्धावान् लगने वाले साधक भी आज सब कुछ छोड़ बैठे दीखते हैं। प्रेरणा का सूत्र टूट गया तथा अपना निज का कोई गहरा स्तर था नहीं फिर उनके पैर भौतिक बाधाओं के झकझोरे में कब तक टिके रहते ? इसलिए हम बारीकी से देखते रहते हैं कि सामने बैठा हुआ लम्बी-चौड़ी बातें बनाने वाला व्यक्ति हमारी विचारधारा के साथ अखण्ड ज्योति या साहित्य के माध्यम से बँधा है या नहीं ? यदि वह इसकी उपेक्षा करता है तो हम समझ लेते हैं कि वह देर तक टिकने वाला नहीं है। जो हमारे विचारों को प्यार नहीं करते, उनका मूल्य नहीं समझते, वे शिष्टाचार में मीठे शब्द भले ही कहें, गुरुजी, गुरुजी भले ही कहें, वस्तुत: हजारों मील दूर हैं। उनसे किसी बड़े काम की आशा नहीं रखी जा सकती।

-अखण्ड ज्योति, जनवरी १९६२, पृष्ठ ४३

२. परिवार रचना की दो परम्पराएँ- परिवारों का गठन दो प्रकार का होता है, एक रक्त परिवार दूसरा विचार परिवार। भावनाओं और आकांक्षाओं की एकता वाले भी एक कुटुम्बी ही बन जाते हैं। रक्त के आधार पर बना हुआ वंश परिवार कहलाता है और भावनाओं के आधार पर बना संगठन ज्ञान परिवार या गुरु परिवार कहलाता है।

संगठन तो पहले भी हमने किया था, पर हमारे विचारों को सबसे नियमित पढ़ने-सुनने की शर्त न रहने से उनकी न तो जीवन दिशा बन

सकी और न आस्था दृढ़ रह सकी। एक से विचारों के लोगों में स्वभावत: प्रेमभाव पैदा होता है। एक दूसरे को प्रेरणा और प्रोत्साहन देते हैं और लौकिक जीवन में भी एक दूसरे की सहायता किसी न किसी प्रकार करते हैं। दूसरे लोग इस संघबद्धता से प्रभावित होते हैं। हममें से प्रत्येक को अपने वैयक्तिक जीवन का सर्वांगपूर्ण विकास करने के लिए अपने समीपवर्ती क्षेत्र में जितनों को भी अपने प्रभाव क्षेत्र में ला सकना संभव हो, उसके लिए शिथिल मन से नहीं, पूरे उत्साह से प्रयत्न करना चाहिए।

युग परिवर्तन कार्यक्रम का आधार ही यह संगठन होगा। व्यापक अनैतिकता का अंत सत्पुरुषों की संगठन शक्ति के बिना और किसी उपाय से संभव नहीं। जितना-जितना यह संगठन व्यापक और प्रबल होता जाएगा, उसी अनुपात से अपने कार्यक्रम बनते चलेंगे और एक-एक कदम उठाते हुए उस लक्ष्य की पूर्णता तक पहुँच सकेंगे, जिसके ऊपर समस्त विश्व की, समस्त मानव जगत् की सुख-शांति निर्भर है।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९६२, पृष्ठ ४५

३. कोई संस्था संगठन न होते हुए भी हमारा यह भावना परिवार वह है जो संस्कारों और भावनाओं के प्रगाढ़ सम्बन्धों के कारण परस्पर अत्यन्त दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ है। युग निर्माण की प्रथम भूमिका का संपादन करने के लिए हमें अपने इस परिवार में आवश्यक जीवन दिखाई पड़ता है। इसी से आरम्भिक कार्यक्रम अपने घर से प्रारम्भ हो रहा है।

पीछे तो इसका विस्तार अपरिचित क्षेत्र में होना है। अगणित व्यक्ति, संगठन, देश और समूह इस योजना को अपने-अपने ढंग से कार्यान्वित करेंगे। जिस प्रकार अध्यात्मवाद, साम्यवाद, भौतिकवाद आदि अनेक वाद कोई संस्था नहीं वरन विचारधारा एवं प्रेरणा होती है। व्यक्ति या संगठन इन्हें अपने-अपने ढंग से कार्यान्वित करते हैं। इसी प्रकार युग निर्माण कार्यक्रम एक प्रकाश-प्रवाह एवं प्रोत्साहन उत्पन्न करने वाला एक मार्गदर्शन बनकर विकसित होगा।

-अखण्ड ज्योति, अप्रैल १९६३, पृष्ठ ४६

४. सज्जनों का संगठन युग निर्माण योजना का लक्ष्य है। इसलिए संगठन से पूर्व हमें सज्जनता के लक्षणों से युक्त मनुष्यों को खोजना पड़ेगा। विचित्र स्वभाव के अवांछनीय गुण, कर्म, स्वभाव के व्यक्तियों का संगठन कुछ महत्त्व नहीं रखता वरन उलटी विकृति उत्पन्न करता है। दुष्ट लोगों का इकट्ठा होना भी बुरा है। वे यदि कहीं इकट्ठे होंगे तो वहाँ विध्वंसक या अनुपयुक्त वातावरण ही उत्पन्न करेंगे।

इसलिए संगठन कार्य आरम्भ करने से पूर्व हमें यह पूरा ध्यान रखना होगा कि सज्जनता प्रधान गुण, कर्म, स्वभाव के लोग ही अपने देवसमाज में सम्मिलित हो सकें। आसुरीवृत्ति प्रधान लोगों को पहले सुधारना चाहिए और जब वे काम के बन जाएँ, तब उन्हें संगठन में सम्मिलित कर लेना चाहिए। एक ओर सुधारक प्रयत्न जारी रहे और दूसरी ओर सुधरे हुओं को संगठन में सम्मिलित करने का।

सेवाभावी उत्साही व्यक्तियों को स्वयंसेवक की तरह अपने आप को जन साधारण के कार्यों में सहयोग देने के लिए आगे कदम बढ़ाना चाहिए और अपना समय देकर दूसरों के साथ सम्पर्क बनाने और उन्हें उपयुक्त प्रेरणा देते रहने का कार्य करना चाहिए। पदाधिकारी या नेता बनने की आकांक्षा बुरी है। इससे संगठन बढ़ते नहीं, नष्ट होते हैं। इसलिए हमें केवल स्वयंसेवक बनने की आकांक्षा करनी चाहिए। कोई पद मिले, नेता चुने जाएँ, तब कुछ काम करेंगे। यह विचार मन से बिल्कुल निकाल देना चाहिए और भावनाशील व्यक्तियों को विचार क्रांति का क्षेत्र व्यापक बनाने एवं उसे संगठित करने में निरंतर लगे रहने को तत्पर होना चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, दिसम्बर १९६३, पृष्ठ ५४

६. अभी दस हजार कर्मयोगियों द्वारा एक लाख व्यक्तियों को विचार क्रांति के छात्रों के रूप में प्रशिक्षित किया जा रहा है, यह संख्या भी कम संतोष, गर्व और हर्ष की नहीं है। एक लाख छात्रों का यह विचार क्रांति विश्वविद्यालय आज की परिस्थितियों में अनुपम एवं अभिनव ही कहा जा सकता है। जीवन निर्माण की कला सिखाने, विवेक सम्मत

विचारधारा अपनाने, नवनिर्माण के लिए त्याग, बलिदान करने को कटिबद्ध करने के लिए ऐसा प्रेरणा केन्द्र कोई था भी नहीं, जो भारतीय जनता में मानसिक स्तर की अभिनव रचना कर सके। इस अभाव की पूर्ति के लिए अपना यह सत्प्रयत्न क्या महत्त्वपूर्ण नहीं है? आज यह प्रयास इतने विस्तृत देश को देखते हुए छोटा भले ही प्रतीत होता हो, पर कल उसके परिणाम दूरगामी होंगे। यह प्रशिक्षण एक लाख तक ही सीमित न रहेगा। आज के यह छात्र कल के युग निर्माण शिक्षक बनेंगे और उनके द्वारा अगली पीढ़ी की शिक्षा आरंभ होगी। यह क्रम चक्रवृद्धि ब्याज की दर से बढ़ेगा तो कुछ ही वर्षों में समस्त संसार को, समस्त मानव जाति को आदर्शवादिता की प्रेरणा से अनुप्राणित कर सकना संभव होगा। वर्तमान कठिनाइयों और बुराइयों के प्रति क्षोभ व्यक्त करते रहने, उन्हें कोसते रहने से कुछ काम चलने वाला नहीं है, प्रतिकार और उपचार से ही कुछ प्रयोजन सिद्ध होता है। अखण्ड ज्योति परिवार की यह विचार क्रांति पद्धति ऐसी ही रचनात्मक प्रक्रिया है, जिसका सुन्दर परिणाम हम थोड़े ही दिनों में प्रत्यक्ष देखेंगे।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६५, पृष्ठ ४५, ४६

७ भीड़ में से संस्कारवानों की खोज—संख्या बल-प्रदर्शन की दृष्टि से उपयोगी होती है पर काम थोड़े से काम के व्यक्ति ही चलाया करते हैं। भीड़ का उत्साह क्षणिक होता है। जिनमें दृढ़ता और निष्ठा नहीं वे आवेश में कुछ तूफान तो कर सकते हैं, पर देर तक किसी आदर्श पर ठहर नहीं सकते। ऐसे लोग नारे लगाने और प्रदर्शन करने के लिए काम चलाऊ प्रयोजन पूरा कर सकते हैं पर किसी दीर्घकालीन पारमार्थिक प्रयोजन के लिए वे कुछ अधिक काम के सिद्ध नहीं हो सकते। कोई ठोस काम हमेशा निष्ठावान आदर्श व्यक्तियों के बलबूते पर ही चलता है।

-अखण्ड ज्योति, नवम्बर १९६६, पृष्ठ ४५

८. अखण्ड ज्योति परिवार का संगठन हमारे आजीवन प्रयत्न का फल है। सूक्ष्म दृष्टि से ढूँढ़-ढूँढ़कर हमने देश भर में से संस्कारवान्

जाग्रत् आत्माओं को प्रयत्नपूर्वक एकत्रित किया है। इसमें बहुत समय लगा है और बहुत श्रम। परिवार के अधिकांश सदस्य पूर्वजन्मों की भारी आध्यात्मिक सम्पदा से सम्पन्न हैं। उनका वर्तमान स्वरूप सामान्य भले ही दीखता हो, पर उनके अंतरंग में वे तत्त्व विद्यमान हैं कि थोड़े से प्रयत्न से उन्हें जगाया, बढ़ाया और समुन्नत स्थिति तक पहुँचाया जा सकता है। वाल्मीकि, अजामिल, अंगुलिमाल, सूरदास, तुलसीदास जैसे हेय जीवन बिताने वाले थोड़ा-सा अवसर मिलने पर देखते-देखते उच्च भूमिका में इसलिए जाग्रत् हो उठे थे कि उनके पास पूर्वजन्मों की संचित संपत्ति बहुत थी। फिर जिनके हेय जीवन नहीं हैं—केवल मूर्छित मात्र हैं, उन्हें सजग और समुन्नत बनाया जा सकना कुछ अधिक कठिन नहीं है।

जिस दिन व्यक्ति की अंत:भूमिका यह स्वीकार कर ले कि मानव जीवन का उद्देश्य पेट पालने और बच्चे उगाने से कुछ आगे बढ़कर भी है, यह अलभ्य अवसर किन्हीं महान प्रयोजन के लिए भगवान् ने दिया है और थोड़ा दुस्साहस कर अपने स्वतंत्र विवेक का सहारा लेकर कोई भी व्यक्ति अपनी विचारणा और प्रक्रिया को बदलने में वैसा ही समर्थ हो सकता है, जैसे कि ऐतिहासिक महापुरुष समर्थ हुए हैं। इतनी सी बात यदि गले उतर जाए तो आज बिलकुल ही गया-गुजरा दीखने वाला व्यक्ति कल अपनी रीति-नीति में आमूल-चूल परिवर्तन कर सकता है और जमीन पर रेंगने वाला, आकाश में उड़ने लग सकता है। संस्कारवान् व्यक्तियों के लिए यह आत्म परिवर्तन अति सरल होता है, कोई छोटी-सी चोट उनकी दिशा में आश्चर्यजनक मोड़ प्रस्तुत कर सकती है।

-अखण्ड ज्योति, नवम्बर १९६८, पृष्ठ ६३

९ संगठन बढ़े-सुदृढ़ बने—हर प्रबुद्ध परिजन को अपने दूसरे साथियों में उल्लास और उत्साह पैदा करना है। इसलिए जहाँ जितने अखण्ड ज्योति परिजन हैं, वहाँ उन्हें परस्पर, सम्पर्क, सहयोग एवं घनिष्ठ भाव पैदा करना चाहिए ताकि एक मजबूत शृंखला में आबद्ध होकर एक दूसरे से प्रेरणा प्राप्त करने की प्रक्रिया ठीक तरह चलने

लगे। अपने में से एक को भी बिछुड़ने नहीं देना चाहिए, वरन् प्रयत्न यह करना चाहिए कि विशालता की अभिवृद्धि हो और संख्या की दृष्टि से हम अब की अपेक्षा दूने चौगुने हो जाएँ। बड़ी सेना अपनी उत्कृष्टता एवं विशालता के आधार पर बड़े मोर्चे फतह करती है। अपना मोर्चा बहुत बड़ा है, अति व्यापक है। समस्त संसार अपना कार्य-क्षेत्र है। जीवन की हर दिशा को प्रकाश देना और संसार की हर समस्या को सुलझाना है। इसलिए शक्ति में वृद्धि भी आवश्यक है। कहना न होगा कि संघ शक्ति इस युग की सबसे बड़ी शक्ति है। हम जितने हैं, उतने पर ही सीमित एवं संतुष्ट नहीं रह सकते हैं। मोर्चे की विशालता को देखते हुए परिवार का विस्तार होना भी अपेक्षित है।

-अखण्ड ज्योति, नवम्बर १९६८, पृष्ठ ६५

१०. भीड़ का संगठन बेकार है। मुर्दों का पहाड़ इकट्ठा करने से तो बदबू ही फैलेगी। जिनके मन में कसक है, जो वस्तुस्थिति को समझ चुके हैं उन्हीं का एक महान प्रयोजन के लिए एकत्रीकरण वास्तविक संगठन कहला सकता है। युग निर्माण परिवार संगठन में अब वे ही लोग लिए जा रहे हैं, जो ज्ञानयज्ञ के लिए समयदान और अंशदान देने के लिए निष्ठा और तत्परता दिखाने लगे हैं। कर्मठ लोगों का संगठन बन जाने पर प्रचारात्मक अभियान को संतोषजनक स्तर तक पहुँचा देने पर ऐसी स्थिति आ जाएगी कि जो अति महत्त्वपूर्ण कार्य इन दिनों शक्ति एवं परिस्थिति के अभाव में कर नहीं पा रहे हैं, वे आसानी से किए जा सकें।

सृजनात्मक और संघर्षात्मक कार्यक्रम की हमें अति विशाल परिमाण पर तैयारी करनी होगी। इन दिनों तो उनकी चर्चा मात्र करते हैं, बहुत जोर नहीं देते, क्योंकि जिस लोक-समर्थन के लिए प्रचार और कार्य कर सकने के लिए जिस संगठन की आवश्यकता है वे दोनों ही तत्त्व अपने हाथ में उतने नहीं हैं, जिससे कि अगले कार्यों को संतोषजनक स्थिति में चलाया जा सके। पर विश्वास है कि प्रचार और संगठन का पूर्वार्ध कुछ ही दिन में संतोषजनक स्तर तक पहुँच जाएगा। तब हम सृजन और

संघर्ष का विशाल और निर्णायक अभियान आसानी से छेंड़ सकेंगे और उसे सरलतापूर्वक सफल बना सकेंगे।

-अखण्ड ज्योति, जून १९७१, पृष्ठ ६०

१०. सद्भावना सम्पन्न, सद्विचार वाले, सन्मार्गगामी सज्जनों की संख्या बढ़ाना, ऐसे गुण, कर्म, स्वभाव के लोगों को खोज करके, उन्हें संगठित करना, युग निर्माण योजना को मूर्तिमान बनाने के लिए आवश्यक है। आगे चलकर वे रचनात्मक कार्य आरंभ करने होंगे जिनके द्वारा मनुष्य में सोये हुए देवत्व का तीव्र गति से जागरण हो सके। वह त्याग, प्रेम, उदारता, संयम, सदाचार का जीवन जिए और इस धरती पर ही स्वर्ग अवतरित हुआ दृष्टिगोचर होने लगे। ऐसा सतयुग लाने के लिए आज की परिस्थितियों को बदलना होगा और चारों ओर फैली हुई दुष्प्रवृत्तियों की असुरता के विरुद्ध हमें एक मजबूत मोर्चाबंदी करके देवासुर संग्राम खड़ा करना होगा। रीछ, बंदरों की ही सही पर सेना तो चाहिए ही। हमें भी अपना संगठन इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करना ही पड़ेगा।

-अखण्ड ज्योति, १९६३ दिसम्बर, पृष्ठ ५६

११. सृजन सेना का गठन करना है— अगला कार्यक्रम परिव्राजकों की सृजन सेना का गठन है। लेखनी, वाणी के माध्यम से चल रहे विचार क्रांति अभियान को अब तक जो सफलता मिली है, उसका श्रेय भी जनसम्पर्क के रूप में चलने वाले प्रयासों को ही दिया जा सकता है। भावी प्रगति का मध्य बिन्दु भी इसी को माना जाएगा। बौद्धकालीन विचार क्रांति की व्यापकता और सफलता का श्रेय उस मिशन के लिए समर्पित परिव्राजकों को ही दिया जा सकता है। उन्हीं के प्रयास से भारत, एशिया और समस्त संसार को धर्मचक्र प्रवर्तन के महान अभियान से लाभ लेने का अवसर मिला था। ज्ञानयज्ञ की लाल मशाल भी उसी प्रक्रिया का उत्तरार्ध सम्पन्न कर रही है, अस्तु माध्यमों के संदर्भ में भी उसी प्रक्रिया का अनुकरण करना होगा। सुयोग्य परिव्राजकों का सुगठित परिवार ही घर-घर में पहुँचकर जन-जन के मन-मन में

युग चेतना का संचार कर सकेगा। जन-जागरण का अलख जगाना प्राणवान् परिव्राजकों के लिए ही संभव हो सकता है।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त, १९७८, पृष्ठ ५५

१२. सभी जानते हैं कि संगठन में कितनी शक्ति होती है। तिनकों के मिलने से हाथी बाँधने वाला मोटा रस्सा बनता है। धागे मिलने से मजबूत फर्श, कालीन बनते हैं। सींकों का सम्मिलित स्वरूप बँधी बुहारी बनता है और सारे घर आँगन को झाड़-बुहारकर साफ करता है। मेले-ठेलों में बिखरी भीड़ धक्के खाती और जेब कटाती है। पर वही जनसमुदाय जब सैनिकों के रूप में संगठित, प्रशिक्षित और कटिबद्ध हो जाता है, तो सुरक्षा और व्यवस्था की महती आवश्यकता पूरी करता है।

नवनिर्माण अपने युग का अति महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य है। इसे सम्पन्न करने के लिए भावनाशीलों का उद्देश्यपूर्ण गठन एक छत के नीचे होना चाहिए। प्रज्ञा परिवार इस बार ऐसी ही छोटी-छोटी इकाइयों के रूप में अपनी समवेत स्थिति प्रकट करने जा रहा है। इसे बड़ा कदम माना जाना चाहिए और आशा की जानी चाहिए कि इस आधार पर व्यक्तित्वों की प्रखरता प्रकट होगी और समाज के नवनिर्माण की प्रक्रिया द्रुतगति से आगे बढ़ चलेगी।

व्यक्तिगत चिंतन, चरित्र और व्यवहार में आदर्शवादिता का समन्वय होना चाहिए। जन-जन की प्रामाणिकता, प्रखरता निखरनी चाहिए। समाज में सहकारिता, उदारता और एकता-समता की रीति-नीति चलनी चाहिए। सर्वत्र समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी का माहौल बनना चाहिए। सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन और दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन समग्र तत्परता और तन्मयता के साथ होना चाहिए। व्यक्ति को उत्कृष्ट और समाज को समर्थ बनाना चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, फरवरी १९८७, पृष्ठ ६७

१३. बड़े संगठन सँभालने में नहीं आते। उनमें अनगढ़ों की भरमार रहने से टाँग खिंचाई होती है और मेढ़क तराजू में तोलने के समय देखी जाने वाली धमा-चौकड़ी मचती है। संख्या प्रदर्शन अपनी कोई

आवश्यकता भी नहीं। यहाँ क्वालिटी चाहिए, क्वान्टिटी नहीं। **इस दृष्टि से हम पाँच से पच्चीस का चक्रवृद्धि क्रम यदि चल पड़े, तो इसी परिवार के बेटे-पोते परपोते मिलकर समूची विश्व-व्यवस्था बना सकने में सफल हो सकते हैं।**

हम पाँच हमारे पच्चीस का उद्घोष यदि प्राणपण से पूरा करने में सभी परिजन भावनापूर्वक जुट पड़ें तो देखते ही देखते एक लाख का प्रज्ञा संगठन खड़ा होने का स्वप्न साकार हो सकता है।

-अखण्ड ज्योति, अक्टूबर १९८८, पृष्ठ ५४

१४. वन्दनीया माताजी का संदेश—वसंत पर्व पर यह मिशन हजारों-लाखों वर्षों तक चलेगा, क्योंकि दैवी शक्ति इसके साथ है। मिशन का सूत्र-संचालन ऐसा है कि न तो किसी को शंका करनी चाहिए, न ही भटकना चाहिए। यदि यह व्यक्ति पर टिका मिशन होता, तो व्यक्ति के साथ ही समाप्त भी हो जाता। यह शक्ति पर टिका अभियान है, दैवी अभियान है। विवेकानन्दों, निवेदिताओं ने अभी अपनी प्रसुप्त क्षमता को पहचाना नहीं है। यदि सभी जाग्रत आत्माओं को यह अनुमान हो सके कि वे क्या हैं व किन उद्देश्यों के लिए उनका अवतरण हुआ है तो देखते-देखते प्रतिकूलताओं के बीच भी नवसृजन होता चला जाएगा। पूज्यवर की परोक्ष जगत् से व मेरी प्रत्यक्ष जगत् से तपश्चर्या इन्हीं उद्देश्यों के निमित्त है।

संकल्प लें कि आजीवन गुरुदेव के पद्चिह्नों पर ही सब चलेंगें वैसा ही उल्लास मन में बनाए रखेंगे तथा विद्या विस्तार के सभी महत्त्वपूर्ण दायित्वों को अंतिम स्थिति तक पहुँचाकर रहेंगे। लोकमंगल के लिए ही सबका समर्पित जीवन होगा। घर-घर में गुरुजी के विचार पहुँचाकर ही रहेंगे।

-अखण्ड ज्योति, मार्च १९९१, पृष्ठ ५७

७. युगऋषि का आश्वासन

१. युग निर्माण आन्दोलन अगले दिनों जिस प्रचण्ड रूप में मूर्तिमान होगा उसकी रहस्यमय भूमिका कम ही लोगों को विदित होगी, पर यह निश्चित है कि वह आन्दोलन बहुत ही प्रखर और प्रचण्ड रूप से उठेगा और पूर्ण सफल होगा। सफलता का श्रेय किन व्यक्तियों को, किन आस्थाओं को मिलेगा इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। पर होना यह निश्चित रूप से है।

-अखण्ड ज्योति, नवम्बर १९६६, पृष्ठ-४७

२. अगला कार्य महाकाल स्वयं करेंगे—हमने अपना जीवन नवयुग की पूर्व सूचना देने, महाकाल के इस महान प्रयोजन में सम्मिलित होने के लिए प्रबुद्ध आत्माओं को निमंत्रण देने में लगा दिया। जिस काम के लिए हम आए थे पूरा होने को है। अगला काम महाकाल स्वयं करेंगे। अगले दिन उनकी प्रेरणा से एक-से-एक बढ़कर प्रतिभाशाली और प्रबुद्ध आत्माएँ आएँगी। ये ऐसा एक व्यापक संघर्ष विश्वव्यापी परिमाण में प्रस्तुत करेंगी, जो असमानता के सारे कारणों को तोड़-मरोड़कर फेंक दे और समता की मंगलमयी परिस्थितियों का शुभारंभ करके इसी धरती पर स्वर्ग का वातावरण संभव कर दिखावे।

-अखण्ड ज्योति, जुलाई १९६९, पृष्ठ ६५

३. मशाल जलती रहेगी—ईश्वरीय प्रेरणा ने इन दिनों एक ऐसे ही युग निर्माण आन्दोलन का सृजन किया है जिसका उद्देश्य जनमानस की विपन्न विचारशैली को बदलकर फिर विवेक और औचित्य के आधार पर सोचने और करने का अवसर मिले। जड़ विचारणा में सन्निहित है पर विचारों के साथ क्रिया संबद्ध है और क्रिया सुधरे, तो परिस्थितियों के सुधरने में कुछ देर नहीं लगती। अस्तु, विचार परिवर्तन

का एक विश्वव्यापी अभियान इन दिनों आरम्भ हुआ है। यद्यपि उसका स्वरूप असुरता के विशाल कलेवर की तुलना में नगण्य जैसा है, पर जो सच्चाई की शक्ति जानते हैं, उन्हें यह विश्वास करने में कठिनाई नहीं होती कि छोटे से प्रकाश के आगे अंधकार का विशाल कलेवर गल जाता है और छोटी-सी चिनगारी सुविस्तृत वनों को जलाकर राख कर देती है। विवेकशीलता का तेल और औचित्य के कपड़े को लेकर मशाल जलाई गई है, वह यों ही बुझ जाने वाली नहीं है। यह अपने युग की महत्तम आवश्यकता एवं ईश्वरीय इच्छा पूरी होने तक जलती ही रहेगी।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९६९, पृष्ठ २, ३

४ विराट् योजना पूरी होकर रहेगी—भारत के पिछले राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में कितनी जनशक्ति और कितनी धनशक्ति लगी थी, यह सर्वविदित है। यह भारत तक और उसके राजनैतिक क्षेत्र तक सीमित थी। अपने अभियान का कार्यक्षेत्र उससे सैकड़ों गुना बड़ा है। अपना कार्यक्षेत्र समस्त विश्व है और राजनीति में ही नहीं वरन व्यक्ति तथा समाज के हर क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन प्रस्तुत करने हैं। इसके लिए कितने सृजनात्मक और कितने संघर्षात्मक मोर्चे खोलने पड़ेंगे, इसकी कल्पना कोई भी दूरदर्शी कर सकता है।

वर्तमान अस्त-व्यस्तता को सुव्यवस्था में परिवर्तित करना एक बड़ा काम है। मानवीय मस्तिष्क की दिशा, विचारणा, आकांक्षा, अभिरुचि और प्रवृत्ति को बदल देना, निष्कृष्टता के स्थान पर उत्कृष्टता की प्रतिष्ठापना करना, सो भी समस्त पृथ्वी पर रहने वाले चार अरब व्यक्तियों में निस्संदेह एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक काम है। इसमें अग्रणी व्यक्तियों, असंख्य आंदोलनों और असीम क्रिया तन्त्रों का समन्वय होगा। यह एक अवश्यंभावी प्रक्रिया है, जिसे महाकाल अपने ढंग से नियोजित कर रहे हैं। हर कोई देखेगा कि आज की वैज्ञानिक प्रगति की तरह कल भावनात्मक उत्कर्ष के लिए भी प्रबल प्रयत्न होंगे और उसमें एक से एक बढ़कर व्यक्तित्व एवं संगठन गजब की भूमिका प्रस्तुत कर रहे होंगे।

यह सपना नहीं, सचाई है। जिसे अगले दिनों हर कोई मूर्तिमान होते हुए देखेगा। इसे भविष्यवाणी नहीं समझना चाहिए, एक वस्तुस्थिति है जिसे हम आज अपनी आँखों पर चढ़ी दुर्बीन से प्रत्यक्षत: देख रहे हैं। कल वह निकट आ पहुँचेगी और हर कोई उसे प्रत्यक्ष देखेगा। अगले दिनों संसार का समग्र परिवर्तन करके रख देने वाला एक भयंकर तूफान विद्युत गति से आगे बढ़ता चला आ रहा है जो इस सड़ी दुनियाँ को समर्थ, प्रबुद्ध, स्वस्थ और समुन्नत बनाकर ही शांत होगा।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९६९, पृष्ठ ६४, ६५

५. लोगों की निगाह से दूर रहें, यह हो सकता है, पर हर जाग्रत् और जीवित आत्मा यह अनुभव करेगी कि हम उसकी अंतरात्मा में बैठकर कोहराम मचा रहे हैं और नर-कीटक एवं नरपशु की जिंदगी को नर-नारायण के रूप में परिणत होने की प्रबल प्रेरणा कर रहे हैं। जो आगे बढ़ेंगे उन्हें भरपूर शक्ति देंगे, जो लड़खड़ा रहे होंगे, उन्हें सँभालेंगे और जो सँभल गए हैं, उन्हें आगे बढ़ने के लिए आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित करेंगे। सृजनात्मक एवं संघर्षात्मक अभियानों का नेतृत्व दूसरे लोग करेंगे पर बाजीगर की उँगलियों की तरह अगणित नर पुतलियों को नचाने में हमारी भूमिका भली प्रकार सम्पादित होती रहेगी, भले ही उसे कोई जाने या न जाने। हमारी तपश्चर्या भी वस्तुत: नव निर्माण के महान अभियान की तैयारी के लिए अभीष्ट शक्ति जुटाने की विशिष्ट प्रक्रिया भर है। हमें जिस प्रयोजन के लिए भेजा गया है, उसे पूरा किए बिना एक कदम भी पीछे हटने वाले नहीं हैं। युग परिवर्तन की महान प्रक्रिया अधूरी नहीं रहने दी जा सकती। नवनिर्माण की ईश्वरीय आकांक्षा अपूर्ण नहीं रह सकती। उसको नियोजित करने के लिए प्रतिभाओं को आगे लाया ही जाएगा। उन्हें इच्छा या अनिच्छा से, देर या सबेर से आगे आना ही पड़ेगा।

-अखण्ड ज्योति, मई १९७०, पृष्ठ ५८, ५९

६. किसी के मन में यह आशंका नहीं रहनी चाहिए कि आचार्य जी के चले जाने के बाद अपना आन्दोलन शिथिल या बन्द हो जाएगा।

ऐसी आशंका करने वाले यह भूल जाते हैं कि यह किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा आरम्भ की हुई प्रवृत्ति नहीं है। इसके पीछे विशुद्ध रूप से ईश्वरीय इच्छा और प्रेरणा काम कर रही है। जिसके पीछे यह शक्ति काम कर रही हो, उसके सम्बन्ध में किसी को आशंका नहीं करनी चाहिए। व्यक्ति असफल हो सकते हैं, भगवान् के असफल होने का कोई कारण नहीं। व्यक्ति की इच्छाएँ अधूरी रह सकती हैं, भगवान् की इच्छा पूरी क्यों न होगी।

अब तक के आन्दोलन की प्रगति को जिन लोगों ने बारीकी से देखा समझा है उन्हें यह विश्वास करना ही चाहिए कि उपलब्ध सफलताएँ हमारे जैसे नगण्य व्यक्ति के माध्यम से किसी भी प्रकार संभव न थी। हमें निमित्त बनाकर कोई महाशक्ति अदृश्य रूप से काम कर रही है। केवल आँखों के सामने कठपुतली नाचने से लोग प्रशंसा उस लकड़ी के टुकड़े की करते हैं जो नाचता दीखता है। वस्तुत: श्रेय उस बाजीगर को है जिसकी उँगलियाँ अपनी अदृश्य संचालन कला के द्वारा उस खेल का सरंजाम जुटा रही हैं।

-अखण्ड ज्योति, नवम्बर १९७०, पृष्ठ ५७

७. हमारा प्रयोजन समझने में किसी को भूल नहीं करनी चाहिए। हम प्रचण्ड आत्मशक्ति की एक ऐसी गंगा को लाने जा रहे हैं, जिससे अभिसप्त सगर-सुतों की तरह आग में जलते और नरक में बिलखते जन समाज को आशा और उल्लास का लाभ दे सकें। हम लोकमानस को बदलना चाहते हैं। इन दिनों हर व्यक्ति का मन ऐषणाओं से भरपूर है। लोग अपने व्यक्तिगत वैभव और वर्चस्व से, तृष्णा और वासना से, एक कदम आगे की बात नहीं सोचना चाहते। उनका पूरा मनोयाग इसी केन्द्र बिन्दु पर उलझा पड़ा है।

हमारी चेष्टा है कि लोग जीने भर के लिए सुख-सुविधा पाकर सन्तुष्ट रहें। उपार्जन हजार हाथों से करें, पर उसका लाभ अपने और अपने बेटे तक सीमित न रखकर समस्त समाज को वितरण करें। व्यक्ति की विभूतियों का लाभ उसके शरीर और परिवार तक ही सीमित

न रहे वरन उसका बड़ा अंश देश, धर्म, समाज और संस्कृति को, विश्वमानव को, लोकमंगल को मिले। इसके लिए व्यक्ति के वर्तमान कलुषित अंतरंग को बदलना अत्यन्त आवश्यक है। व्यक्तिवाद के असुर को समूहवाद के देवत्व में परिणत न किया गया, तो सर्वनाश के गर्त में गिरकर मानवीय सभ्यता को आत्महत्या करने के लिए विवश होना पड़ेगा।

इस विभीषिका को रोकने के लिए हम अग्रिम मोर्चे पर लड़ने जा रहे हैं। स्वार्थपरता और संकीर्णता की अंधतमिस्रा, असुरता में पैर से लेकर सर तक डूबे हुए जनमानस को उभारने और सुधारने में हम अधिक तत्परता और सफलता के साथ कुछ कहने लायक कार्य कर सकें, हमारी भावी तपश्चर्या का प्रधान प्रयोजन यही है। आत्मविद्या की महत्ता को भौतिक विज्ञान की तुलना में अधिक उपयोगी और अधिक समर्थ सिद्ध करने से ही उस उपेक्षित क्षेत्र के प्रति लोक रुचि मुड़ेगी, सो उसे प्रामाणिकता की हर कसौटी पर खरी सिद्ध कर सकने लायक उपलब्धियाँ प्राप्त करने हम जा रहे हैं। हमारा भावी जीवन इन्हीं क्रियाकलापों में लगेगा, सो परिवार के किसी स्वजन को हमारे इस महाप्रयाण के पीछे आशंका या निराशाजनक बात नहीं सोचनी चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, मार्च १९७१, पृष्ठ ५०

८. प्रचारात्मक, संगठनात्मक, रचनात्मक और संघर्षात्मक चतुर्विध कार्यक्रमों को लेकर युग निर्माण योजना क्रमशः अपना क्षेत्र बनाती और बढ़ाती चली जाएगी। निःसन्देह इसके पीछे ईश्वरीय इच्छा और महाकाल की विधि व्यवस्था काम कर रही है, हम केवल उसके उद्घोषक मात्र हैं। यह आंदोलन न तो शिथिल होने वाला है, न निरस्त। हमारे तपश्चर्या के लिए चले जाने के बाद वह घटेगा नहीं—हजार लाख गुना विकसित होगा। सो हममें से किसी को शंका-कुशंकाओं के कुचक्र में भटकने की अपेक्षा अपना वह दृढ़ निश्चय परिपक्व करना चाहिए कि विश्व का नवनिर्माण होना ही है और उससे अपने अभियान को, अपने परिवार

को अति महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक भूमिका का सम्पादन करना ही है।

-अखण्ड ज्योति, जून १९७१, पृष्ठ ६१

९. **ईश्वरीय योजना यों लागू होगी—** ईश्वर को यह किसी प्रकार मंजूर नहीं। बच्चों को बारूद से खेलने की छूट नहीं दी जा सकती। महाकाल ने इस अव्यवस्था को व्यवस्था में पलटने के लिए अपना शस्त्र उठा ही लिया है। उसकी प्रत्यावर्तन प्रक्रिया चल पड़ी है। हम साँस रोक कर देखें कि अगले दिनों क्या होता है; प्रवाह कैसे बदलता है, दुनिया कैसे उलटती है और असंभव लगने वाला प्रसंग कैसे संभव बनता है। मनुष्य को बदलना ही पड़ेगा। इच्छा से भी और अनिच्छा से भी। यह रीति-नीति देर तक नहीं चल सकती। युग परिवर्तन एक निश्चित तथ्य है। उसके बिना और कोई गति नहीं। इस हेर-फेर के लिए अब अधिक समय प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। इन दिनों अंतरिक्ष में चल रही हलचलें अगले ही दिनों साकार रूप धारण करेंगी और हम एक ऐसी महाक्रांति का इन्हीं आँखों से दर्शन करेंगे जिसमें सब कुछ उलट-पुलट करने की सामर्थ्य भरी होगी।

-अखण्ड ज्योति, मई १९७२, पृष्ठ ३१

१०. नवनिर्माण के अवतरण की किरणें अगले दिनों प्रबुद्ध एवं जीवन्त आत्माओं पर बरसेंगी। वे व्यक्तिगत लाभ में संलग्न रहने की लिप्सा को लोकमंगल के लिए उत्सर्ग करने की आंतरिक पुकार सुनेंगे। यह पुकार इतनी तीव्र होगी कि चाहने पर भी वे संकीर्ण स्वार्थपरता भरा व्यक्तिवादी जीवन जी ही न सकेंगे। लोभ और मोह की जटिल जंजीरे वैसी ही टूटती दीखेंगी जैसे कृष्ण जन्म के समय बंदीगृह के ताले अनायास ही खुल गए थे?

यों मायाबद्ध कृमि कीटकों के लिए वासना और तृष्णा की परिधि तोड़कर परमार्थ के क्षेत्र में कदम बढ़ाना लगभग असंभव जैसे लगता है। पेट और प्रजनन की विडम्बनाओं के अतिरिक्त वे क्या आगे की और कुछ बात सोच या कर सकेंगे? पर समय ही बतायेगा कि इसी जाल जंलाल में जकड़े हुए वर्गों में से कितनी प्रबुद्ध आत्माएँ उछलकर

आगे आती हैं और सामान्य स्थिति में रहते हुए कितने ऐसे अद्भुत क्रियाकलाप सम्पन्न करती हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ेगा। जन्मजात रूप से तुच्छ स्थिति में जकड़े हुए व्यक्ति अगले दिनों जब महामानवों की भूमिका प्रस्तुत करते दिखाई पड़ें, तो समझना चाहिए युग परिवर्तन का प्रकाश एवं चमत्कार सर्वसाधारण को प्रत्यक्ष हो चला।

-अखण्ड ज्योति, मई १९७२, पृष्ठ ३४

११. अगले दिनों ज्ञानतन्त्र ही धर्मतन्त्र होगा। चरित्र निर्माण और लोकमंगल की गतिविधियाँ धार्मिक कर्मकाण्डों का स्थान ग्रहण करेंगी। तब लोग प्रतिमा पूजक देव मंदिर बनाने की तुलना में पुस्तकालय विद्यालय जैसे ज्ञान मंदिर बनाने को महत्त्व देंगे। तीर्थयात्राओं और ब्रह्मभोजों में लगने वाला धन लोक शिक्षण की भावभरी सत्प्रवृत्तियों के लिए अर्पित किया जाएगा। कथा पुराणों की कहानियाँ तब उतनी आवश्यक न मानी जाएँगी जितनी जीवन समस्याओं को सुलझाने वाली प्रेरणाप्रद अभिव्यंजनाएँ। धर्म अपने असली स्वरूप में निखर कर आएगा और उसके ऊपर चढ़ी हुई सड़ी गली केंचुली उतरकर कूड़े करकट के ढेर में जा गिरेगी।

ज्ञानतन्त्र वाणी और लेखनी तक ही सीमित न रहेगा, वरन् उसे प्रचारात्मक, रचनात्मक एवं संघर्षात्मक कार्यक्रमों के साथ बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक क्रांति के लिए प्रयुक्त किया जाएगा। साहित्य, संगीत, कला के विभिन्न पक्ष विविध प्रकार से लोकशिक्षण का उच्चस्तरीय प्रयोजन पूरा करेंगे। जिनके पास प्रतिभा है, जिनके पास सम्पदा है, वे उससे स्वयं लाभान्वित होने के स्थान पर समस्त समाज को समुन्नत करने के लिए समर्पित करेंगे।

-अखण्ड ज्योति, मई १९७२, पृष्ठ ३५

१२. अभी भारत में, हिन्दू धर्म में, धर्ममंच से, युग निर्माण परिवार में यह मानव जाति का भाग्य निर्माण करने वाला अभियान केन्द्रित दिखाई पड़ता है, पर अगले दिनों उसकी वर्तमान सीमाएँ अत्यंत विस्तृत होकर असीम हो जाएँगी। तब किसी एक संस्था-संगठन का नियन्त्रण-

निर्देश नहीं चलेगा, वरन् कोटि-कोटि घटकों से विभिन्न स्तर के ऐसे ज्योति पुंज फूटते दिखाई पड़ेंगे, जिनकी अकूत शक्ति द्वारा सम्पन्न होने वाले कार्य अनुपम और अद्भुत ही कहे समझे जाएँगे।

महाकाल ही इस महान परिवर्तन का सूत्रधार है और वही समयानुसार अपनी आज की मंगलाचरण थिरकन को क्रमशः तीव्र से तीव्रतर, तीव्रतम करता चला जाएगा। ताण्डव नृत्य से उत्पन्न गगनचुंबी जाज्वल्यमान आग्नेय लपटों द्वारा पुरातन को नूतन में परिवर्तित करने की भूमिका किस प्रकार, किस रूप में अगले दिनों सम्पन्न होने जा रही है आज उस सब को सोच सकना, कल्पना परिधि में ला सकना सामान्य बुद्धि के लिए प्रायः असंभव ही है। फिर भी जो भवितव्यता है वह होकर रहेगी। युग को बदलना ही है। आज की निविड़ निशा का कल के प्रभातकालीन अरुणोदय में परिवर्तन होकर ही रहेगा।

-अखण्ड ज्योति, अप्रैल १९७३, पृष्ठ ५९

१३. जिस भ्रष्टाचार को, अपराधी दुष्प्रवृत्तियों को पुलिस और अदालतें रोक नहीं पा रही हैं, यदि जाग्रत् जनता इन गुण्डा-तत्वों के विरुद्ध भवें तरेर दे, तो इन मुट्ठी भर अनाचारियों का जीवित रहना कठिन हो जाएगा। अनाचारी आतंकवाद इसीलिए जीवित है कि मुट्ठी भर अवांछनीय तत्वों की असामाजिक गतिविधियों के विरुद्ध रोष, आक्रोश जगाया नहीं गया है। जिस दिन जनशक्ति की चंड़ी जगेगी, उस दिन अभाव, अशक्ति और अज्ञान के दुर्दांत असुरों का अस्तित्व इस धरती पर बना रहना संभव न होगा। इन सबकी दुर्गति महिषासुर, मधुकैटभ और शुंभ-निशुंभ जैसी होगी।

संघशक्ति का ही दूसरा नाम चण्डी है। पौराणिक कथा-प्रसंग के अनुसार देवताओं की सम्मिलित शक्ति इकट्ठी करके ही तो भगवती दुर्गा को सृजा गया था। देवताओं को विजेता और असुरों को पराजित करने के लिए उसी प्रयोग की पुनरावृत्ति अब फिर की जाए, इसके लिए आज का ही उपयुक्त समय है।

-अखण्ड ज्योति, जनवरी १९७४, पृष्ठ ४१

१४. महाकाल की अवतरण प्रक्रिया—युग अवतरण के पीछे महाकाल की इच्छा और प्रेरणा का अनुमान लगाने में जिन्हें असमंजस था, वे इस पुण्य प्रक्रिया को उसी प्रकार सुविस्तृत होते देख रहे हैं, जैसे कि ऊषा का हलका-सा आलोक क्रमशः अधिक प्रखर होता और अरुणोदय की प्रत्यक्ष स्थिति तक जा पहुँचता है। इन दिनों ध्वंसात्मक शक्तियाँ भी जीवन-मरण की बाजी लगाकर विघातक विभीषिकाएँ उत्पन्न करने में कोई कमी नहीं रहने दे रही हैं। फिर भी आशा का केन्द्र यह है कि उसका सामना करने वाले देवत्व का शौर्य और पराक्रम भी निखरता और प्रखर होता चला आ रहा है। निराशा तभी तक रहती है जब तक पराक्रम नहीं जगता। चेतना के ऊँचे स्तर जब उभरते हैं तो न दुष्टता ठहर सकती हैं न भ्रष्टता।

जीतता सत्य ही है असत्य नहीं। जीवन ही शाश्वत है, मरण तो उससे आँख मिचौनी खेलने भर जब तब ही आता है। सूर्य और चंद्र का आलोक अमर है—उस पर ग्रहण तो जब-तब ही चढ़ता है। स्रष्टा की इस सुंदर कलाकृति की गरिमा शाश्वत है। विकृतियाँ तो बुलबुलों की तरह उठती और उछल-कूद का कौतुक दिखा कर अपनी लीला समेट लेती हैं। '**यदा-यदा हि धर्मस्य**' का आश्वासन देने वाला युग विकृतियों का निराकरण करने के लिए समय-समय पर सन्तुलन को सँभालने के लिए आता रहा है। आज की विभीषिकाएँ उस दिव्य अवतरण की पुकार करती हैं तो आना कानी क्यों होती? विलम्ब क्यों लगता? युग चेतना के रूप में महाकाल की अवतरण प्रक्रिया का परिचय हम सब इन्हीं दिनों प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त कर रहे हैं।

जाग्रत् आत्माओं को युग की चुनौती को स्वीकार करने के लिए इन दिनों जो उत्साह उमड़ा है वह देखते ही बनता है। मूर्छितों और अर्धमृतकों को छोड़कर महाकाल की हुँकार ने हर प्राणवान को युग धर्म का पालन करने की, युग साधना में संलग्न होने की प्रेरणा दी है। फलतः युग सृजन में योगदान देने के लिए हर समर्थ-असमर्थ के चरण बढ़ रहे हैं।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९७८, पृष्ठ-५४

१५. विपत्तियाँ भौतिक क्षेत्र में बढ़ रही हैं और विकृतियों से आत्मिक क्षेत्र उद्विग्न होता जा रहा है। सुधार और बचाव के प्रयास अपेक्षाकृत बहुत धीमे हैं। लगता है मनुष्य द्वारा अन्यमनस्क भाव से किया गया आधा-अधूरा प्रयास वर्तमान की समस्याओं को सुलझाने तथा भविष्य की विभीषिकाओं को परास्त करने में सफल नहीं हो सकेगा, एक गज जोड़ने के साथ-साथ दस गज टूटने का क्रम चल रहा है। ऐसी दशा में विश्व के महाविनाश के गर्त में जा गिरने की ही आशंका है।

अवतार ऐसे ही समय में प्रकट होते हैं। मनुष्य का बाहुबल थक जाता है और विनाश की आशंका बलवती हो जाती है, तो प्रवाह को उलटने का पुरुषार्थ महाकाल ही करता है। सृष्टि को अपनी उस सुरम्य विश्व वाटिका का दर्द भरा अवसान सहन नहीं हो सकता। वे धर्म की ग्लानि और अधर्म की अभिवृद्धि को एक सीमा तक ही सहन कर सकते है। मानवी पुरुषार्थ जब सन्तुलन बनाए रहने में असफल होता है तो व्यवस्था को भगवान् स्वयं सँभालते हैं। राष्ट्रपति शासन तभी लागू होता है, जब राज्य की सामान्य व्यवस्था लड़खड़ा जाती है। पागलों और बालकों के अधिकार का उत्तरदायित्व किन्हीं अन्य संस्थाओं को सौंप दिया जाता है।

इन दिनों ऐसा ही होने जा रहा है। महाकाल की चेतना सूक्ष्म जगत् में ऐसी महान हलचलें विनिर्मित कर रही है जिसके प्रभाव परिणाम को देखते हुए उसे अप्रत्याशित और चमत्कारी ही माना जाएगा। अवतार सदा ऐसे ही कुसमय में होते रहे हैं जैसे कि आज हैं। अवतारों ने लोक चेतना में ऐसी प्रबल प्रेरणा भरी है जिससे अनुपयुक्त को उपयुक्त में बदल देने की सम्भावना सरल हो सके। दिव्य चक्षुओं की युगान्तरीय चेतना को गंगावतरण की तरह धरती पर उतरते देखा जा सकता है। चर्म चक्षुओं को भी कुछ ही दिनों में अवतार के लीलासंदोह का परिचय प्रत्यक्ष एवं सुनिश्चित रूप से देखने को मिलेगा।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७९, पृष्ठ १३

१६. प्रज्ञावतार की सक्रिय भूमिका—बाह्योपचारों के लिए कोई मनाही नहीं। वे होते हैं और होते रहने चाहिए। किन्तु महत्त्व अंत:उपचार का भी समझा जाना चाहिए। युग परिवर्तन का वास्तविक तात्पर्य है अंत:करण में जमी हुई आस्थाओं का उत्कृष्टतावादी पुनर्निर्धारण, समस्त समस्याओं का समाधान इस एक ही उपाय पर केंद्रित है, क्योंकि गुत्थियों का निर्माण इसी क्षेत्र में विकृतियाँ उत्पन्न होने के कारण हुआ है। खाद्य संकट, ईंधन संकट, स्वास्थ्य संकट, सुरक्षा संकट की तरह आस्था संकट के व्यापक क्षेत्र और प्रभाव को भी समझा जाना चाहिए। युग की समस्याओं के समाधान में इससे कम में काम चलेगा नहीं और इससे अधिक और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।

यों लोगों को आश्वासन देने की दृष्टि से सुधार और संवर्द्धन के बहिर्मुखी प्रयास भी चलते रहने चाहिए। किन्तु ठोस बात तभी बनेगी, जब समष्टि के अंत:करण में उत्कृष्टता की आस्थाओं का आरोपण और अभिवर्द्धन युद्धस्तरीय आवेश के साथ किया जाएगा। एक ही समस्या है और एक ही समाधान। मनुष्य इसे भले ही समझ न पाए, पर महाकाल को यथार्थता की जानकारी है। वह लोक मानस में आस्थाओं को पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए प्रज्ञावतार को भेज रहा है। उसका प्रधान उद्देश्य अनास्था को आस्था में बदल देना ही होगा।

–अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७९, पृष्ठ १७

१७. आमतौर से लोभ, मोह और अहंकार के दैत्य ही जनसाधारण को कठपुतली की तरह नचाते हैं। यही प्रभाव सर्वत्र चल रहा है। समर्थ, असमर्थ, धनी, निर्धन, शिक्षित, अशिक्षित इन दिनों सभी अपने तुच्छ स्वार्थों की सिद्धि में बुरी तरह संलग्न हैं। लिप्सा और लालसा की कीचड़ में लोक चेतना गहराई तक धंसी हुई है। सामान्य प्रयत्नों से इसमें हेर-फेर होते दिखाई नहीं पड़ रहा है, किन्तु प्रज्ञावतार की प्रेरणा नए आयाम प्रस्तुत करेगी। अंत:प्रेरणा का उद्‍गम ही बदलने लगेगा। लोग अपना स्तर उत्कृष्टता की ओर उठाने और आदर्शवादिता की ओर बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे। यह

परिवर्तन बाहर से थोपा हुआ नहीं; भीतर से उभरा हुआ होगा।

कहने, सुनने को तो धर्म और अध्यात्म की, भक्ति और शांति की, सज्जनता और उदारता की चर्चा आए दिन कहने, सुनने को मिलती रहती है। कइयों का विनोद विषय भी यही होता है। तथाकथित धर्मगुरु, लोक नेता, लेखक, वक्ता उत्कृष्टता की चर्चा आए दिन करते रहते हैं किंतु उन प्रतिपादनों को क्रियान्वित करते इनमें से कोई बिरले ही देखे जाते हैं। फिर सर्वसाधारण के लिए तो उन्हें आचरण में उतारना और भी अधिक कठिन होता है। उदाहरण तो केवल समझाने के लिए प्रचार प्रक्रिया अपनाने के रूप में ही हो सकता है, सो हो भी रहा है। लेखनी और वाणी से आदर्शवादिता का प्रतिपादन भी कम नहीं हो रहा है किंतु सफलता इसलिए नहीं मिलती कि लोक चेतना की अंत:स्थिति उसे स्वीकारने और अपनाने को सहमत नहीं होती। कानों के सुनने या मस्तिष्क से समझने से काम बनता नहीं। व्यक्ति की स्थिति और कृति तो अंत:प्रेरणा से ही बदलती है। इन दिनों उसी क्षेत्र के ऊसर हो जाने से जो बोया जाता है वह निष्फल होकर रह जाता है। प्रज्ञावतार इस कठिनाई का समाधान करेगा।

–अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७९, पृष्ठ ३६

१८. स्पष्ट उद्‍घोष— हमें पूरा विश्वास है कि मनुष्य की समझ लौटेगी। परमसत्ता का सहयोग मिलेगा, प्रकृति अनुग्रह करेगी। बुरे समय की संभावना अब समाप्त ही होने जा रही है, **यह हमारी आने वाले कल के सम्बन्ध में भविष्यवाणी है।**

इस परम पुरुषार्थ के निमित्त ही इन दिनों हम अपने पाँच प्रतिनिधि विनिर्मित करने में लगे हुए हैं। मौन और एकान्त साधना के उपक्रम के साथ-साथ प्रजनन जैसी अतीव कठोर तपश्चर्या चल रही है। यह प्रतिनिधि अथवा वंशज हमसे किसी प्रकार दुर्बल न होंगे। वरन् सूक्ष्म शरीरधारी होने के कारण संसार में फैले हुए प्रतिभावानों को झकझोर कर नवसृजन योजना में उसी प्रकार बलपूर्वक संलग्न करेंगे, जैसा कि हमारे मार्गदर्शक ने हमें किया है।

(१) बुद्धिजीवी (२) शासक (३) कलाकार (४) सम्पन्न तथा (५) भावनाशील वर्ग के लोग कम नहीं है। इनमें से कितने ही निकट भविष्य में अपनी क्षमताओं को स्वार्थ से हटाकर परमार्थ में नियोजित करेंगे और वातावरण आश्चर्यजनक रूप से बदला हुआ प्रतीत होगा।

हमारा अस्तित्व बना रहेगा और हम अपनी भूमिका अब से भी अधिक अच्छी तरह निभाते रहेंगे। यह हो सकता है कि इस बीच हम वर्तमान शरीर को त्याग दें। हिमालय के ऋषि क्षेत्र में रहकर उनके साथ मिल-जुलकर सूक्ष्म शरीर से काम करें। जो भी करना होगा उसमें हमारा मार्गदर्शक साथ रहेगा। उसके मार्गदर्शन में हमारे सम्पर्क क्षेत्र में कल्याण मार्ग का ही नियोजन हुआ है। आगे जो होने वाला है उस भविष्य को विगत भूतकाल की तुलना में अधिक श्रेष्ठ और शानदार ही माना जाना चाहिए।

–अखण्ड ज्योति, मार्च १९८५, पृष्ठ-६५

अनावश्यक सम्पन्नता की ललक ही बेकाबू होने पर उन अनर्थकारी संरचनाओं में प्रवृत्त होती है, जिनके कारण अनेकानेक रंग रूप वाले अनाचारों को व्यापक, विस्तृत और प्रचण्ड होते हुए देखा जा रहा है। लिप्साओं में किसी प्रकार कटौती बन पड़े, तो ही वह जूझारुपन उभर सकता है, जो अवांछनीयताओं से गुँथे ओर पटकनी देकर परास्त कर सके।

सतयुग की वापसी, पृष्ठ-२७

८. परिजनों को निर्देश

१. परिवार के प्रति कर्त्तव्यपरायण हों, मोह में न पड़ें— परिवार के प्रति हमें सच्चे अर्थों में कर्त्तव्यपरायण और उत्तरदायित्व निर्वाह करने वाला होना चाहिए। आज मोह के तमसाछन्न वातावरण में जहाँ बड़े लोग छोटों के लिए दौलत छोड़ने की हविस में और उन्हीं की गुलामी करने में मरते-खपते रहते हैं, वहाँ घर वाले भी इस शहद की मक्खी को हाथ से नहीं निकलने देना चाहते, जिसकी कमाई पर दूसरे ही गुलछर्रे उड़ाते हैं। आज के स्त्री बच्चे यह बिल्कुल पसंद नहीं करते कि उनका पिता या पति उनको लाभ देने के अतिरिक्त लोकमंगल जैसे कार्यों में कुछ समय या धन खर्च करे। इस दिशा में कुछ करने पर घर का विरोध सहना पड़ सकता है। उन्हें आशंका रहती है कि कहीं इस ओर दिलचस्पी लेने लगे तो अपने लिए जो मिलता था उसका प्रवाह दूसरी ओर मुड़ जाएगा। ऐसी दशा में स्वार्थ संकीर्णता के वातावरण में पले उन लोगों का विरोध उनकी दृष्टि में उचित भी है, पर उच्च आदर्शों की पूर्ति उनके अनुगमन से संभव ही नहीं रहती।

यह सोचना क्लिष्ट कल्पना है कि घर वालों को सहमत करने के बाद तब परमार्थ के लिए कदम उठाएँगे। यह पूरा जीवन समाप्त हो जाने पर भी संभव न होगा। जिन्हें वस्तुतः कुछ करना हो, उन्हें अज्ञानग्रस्त समाज के विरोध की चिन्ता न करने की तरह परिवार के अनुचित प्रतिबंधों को भी उपेक्षा के गर्त में ही डालना पड़ेगा। घर वाले जो कहें, जो चाहें वही किया जाए यह आवश्यक नहीं। हमें मोहग्रस्त नहीं विवेकवान् होना चाहिए और पारिवारिक कर्त्तव्यों की उचित मर्यादा का पालन करते हुए उन लोभ एवं मोह भरे अनुबन्धों की उपेक्षा ही करनी चाहिए, जो हमारी क्षमता को लोकमंगल में न लगने देकर कुटुम्बियों की ही

सुख-सुविधा में नियोजित किए रहना चाहते हैं। इस प्रकार का पारिवारिक विरोध आरम्भ में हर महामानव और श्रेयपथ के पथिक को सहना पड़ा है। अनुकूलता पीछे आ गई यह बात दूसरी है, पर आरम्भ में श्रेयार्थी को परिवार के इशारे पर गतिविधियाँ निर्धारित करने की अपेक्षा आत्मा की पुकार को ही प्रधानता देने का निर्णय करना पड़ा है।

-अखण्ड ज्योति, जून १९७१, पृष्ठ ५८

२. सृजनशिल्पी की भूमिका निभानी है—युग निर्माण परिवार के प्राणवान परिजनों को इन दिनों सृजनशिल्पी की भूमिका निभानी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि भौतिक ललक लिप्साओं पर नियंत्रण किया जाए। लोभ, मोह के बंधन ढीले किए जाएँ। संकीर्ण स्वार्थपरता को हलका किया जाए। पेट और प्रजनन भर के लिए जीवन की सम्पदा का अपव्यय करते रहने की आदत को मोड़ा-मरोड़ा जाए। औसत भारतीय स्तर का निर्वाह पर्याप्त समझा जाए। महत्त्वाकांक्षाओं की दिशा बदली जाए। वासना, तृष्णा और अहंता के आवेश शिथिल किए जाएँ। युग धर्म के निर्वाह के लिए कुछ बचत इसी परिवर्तन से हो सकती है। परमार्थ तभी बन पड़ता है, जब स्वार्थ पर अंकुश लगाया जाए।

ब्राह्मणत्व और देवत्व की गरिमा स्वीकार करने और उच्चस्तरीय आदर्शों को व्यवहार में उतारने के साहस जुटाने का यही अवसर है। उसे चूका नहीं जाना चाहिए। युग पर्व के विशेष उत्तरदायित्वों की अवमानना करने वाले जीवंत प्राणवानों को चिरकाल तक पश्चात्ताप की आग में जलना पड़ता है। देव मानवों की विरादरी में रहकर कायरता के व्यंग, उपहास सहना जितना कठिन पड़ता है उतना उच्च प्रयोजन के लिए त्याग, बलिदान का जोखिम उठाना नहीं।

जिनकी अंतरात्मा में ऐसी अंत:प्रेरणा उठती हो वे उसे महाकाल प्रेरित युग चेतना का आह्वान 'उद्बोधन' समझें और तथाकथित बुद्धिमानों और स्वजनों की उपेक्षा करके भी प्रज्ञावतार का अनुकरण करने के लिए चल पड़ें। इसमें इन्हें प्रथमत: ही प्रसव पीड़ा की तरह कुछ

अड़चन पड़ेगी, पीछे तो सब कुछ शुभ और श्रेष्ठ ही दृष्टिगोचर होगा।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७९, पृष्ठ ५५, ५६

३. ज्ञानयज्ञ के लिए अंशदान—नव सृजन के लिए साधनों की भी आवश्यकता रहेगी ही। भौतिक प्रयोजनों में तो अर्थ साधन ही प्रधान होते हैं, किन्तु युग प्रवाह बदलने जैसे अध्यात्म अभियान के लिए भी अंतत: साधन तो चाहिए ही। यों श्रम, समय, मनोयोग, भाव संवेदन जैसे तत्त्वों की ही युग परिवर्तन में प्रमुखता मानी जाएगी, फिर भी अर्थ साधनों के बिना उन्हें भी कार्य रूप में परिणत कर सकना सम्भव नहीं हो सकेगा। वस्तुएँ तो इस निमित्त भी चाहिए ही। सामान्य निर्माण कार्यों के लिए साधन जुटाने पड़ते हैं फिर इस महानतम कार्य के लिए साधनों के बिना ही काम चलता रहे ऐसा संभव नहीं।

यह आवश्यकता भी जाग्रत् आत्माओं को ही पूरी करनी होगी। वैयक्तिक कार्यों में कटौती करके ही युग धर्म के लिए समयदान की व्यवस्था बन सकती है। इसी प्रकार निजी खर्चों में कटौती करके ही युग की पुकार के निमित्त अर्थ साधन प्रस्तुत कर सकना सम्भव हो सकता है। उत्तराधिकारियों के लिए जो अनावश्यक धन सम्पदा छोड़ी जाती है, उस मोह ग्रस्तता पर अंकुश लगाने का तो हर दृष्टि से औचित्य है। निजी परिवार को ही सब कुछ मानते रहना और विश्व परिवार के लिए कुछ भी न करना, ऐसा व्यामोह है जो युग शिल्पियों के लिए अशोभनीय ही ठहरता है।

युग निर्माण परिवार के हर सदस्य को आरम्भ से ही एक घंटा समय और आधा कप चाय की कीमत ज्ञानयज्ञ के लिए देते रहने की प्रेरणा दी गई है। वह दिशा निर्धारण युग शिल्पियों के लिए आरंभिक एवं अनिवार्य कर्त्तव्य बोध की तरह था। अब उसमें उदात्त अभिवृद्धि का समय आ गया। समय और धन दोनों ही अनुदानों का स्त्र तथा परिमाण बढ़ना चाहिए। जिसे अपने अंतरंग में जितनी युग चेतना हलचल मचाती दिखाई पड़े, उन्हें उतने से ही भावभरे अनुदान प्रस्तुत करने की तैयारी करनी चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७९, पृष्ठ-५६

४. प्रज्ञापुत्रों को जाग्रत् जीवन्त होना है—युगसंधि के इस बीजारोपण वर्ष में सभी प्रज्ञापुत्रों को जाग्रत् और जीवंत होने के लिए कहा गया है। आदर्शवादी कल्पना, मान्यता, भावना अपने समय पर अपने स्थान पर उपयुक्त है, पर इतने भर से काम चलता नहीं। मनमोदक खाने से किसका पेट भरा है। शेखचिल्ली को उसका मनचाहा गृहस्थ कहाँ मिला था। आदर्शवादिता अपनाने में अपने अभ्यस्त चिंतन और निर्धारित जीवनचर्या में क्रान्तिकारी उलट-पुलट करनी होती है। जो ऐसा साहस जुटा पाते हैं, जुटाने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करते हैं उन्हीं को साधक कहते हैं।

साधना से सिद्धि मिलने का सिद्धान्त सुनिश्चित है। सिद्धि का तात्पर्य जादुई चमत्कार दिखाकर किसी को अचंभे में डालना नहीं वरन यह है कि अपनी प्रबल मनस्विता और पुरुषार्थ परायणता के सहारे अभीष्ट लक्ष्य तक हर कीमत पर पहुँच कर ही रहा जाए। युगशिल्पी यदि यह अनुभव करते हैं कि महाकाल ने इन दिनों उनके लिए युग सृजन की साधना ही सर्वोपरि महत्त्व की समझी और निर्धारित की है तो फिर उन्हें अंगद, हनुमान, अर्जुन, विवेकानंद, रामतीर्थ, गोविंद सिंह, समर्थ रामदास, चाणक्य, बुद्ध, महावीर, गाँधी, विनोबा आदि के चरणचिह्नों पर चलते हुए युग धर्म के निर्वाह में एकनिष्ठ भाव से लग जाना चाहिए। इसके लिए प्रवचन कला इतनी प्रभावी नहीं हो सकती जितनी कि अपना आदर्शवादी उदाहरण प्रस्तुत कर सकने की साहसिकता। इन दिनों इसी उभार की अत्यधिक आवश्यकता है।

इन्हीं दिनों प्रत्येक प्रज्ञा पुत्र को अपने स्वरूप को समझने और तदनुरूप जीवन की दिशाधारा निर्धारित करने के लिए आग्रह किया जा रहा है। इसे व्यक्ति विशेष का अनुरोध न समझा जाए, अपितु महाकाल का ऐसा निर्देश निर्धारण माना जाए, जिसे मानने पर ही आत्मिक जागरुकता सार्थक होती है। जो बहाने तकेंगे, कृपणता की व्यस्तता और चिंताओं के आवरण में छिपाने का प्रयत्न करेंगे, वे मुँह छिपा लेने पर भी प्रस्तुत कठिनाइयों से बच नहीं सकेंगे। अमूल्य समय को गँवा बैठने की हानि

इतनी बड़ी सहेंगे जिसके लिए अनंतकाल तक पश्चात्ताप करना पड़ेगा और उसकी क्षतिपूर्ति कदाचित भविष्य में कभी भी संभव न हो सकेगी।

-अखण्ड ज्योति, अक्टूबर १९८०, पृष्ठ १०

५. प्रज्ञा परिवार—अपने मिशन और परिवार का नामकरण गायत्री परिवार किया गया। अगले दिनों इसका स्वरूप ज्यों का त्यों रहेगा, पर बोलचाल की भाषा में उसे प्रज्ञा परिवार कहना भी उपयुक्त है। अब तक गायत्री परिवार के सदस्य परिजन कहलाते रहे हैं किंतु अब उन्हें अपने समुदाय और उत्तरदायित्व का बोध कराने वाला चिर प्राचीन किंतु नवीन नाम 'प्रज्ञा परिजन' दिया जा रहा है।

गायत्री उपासक के स्थान पर 'प्रज्ञापुत्र' कहे जाने का महत्त्व आत्मबोध की दृष्टि से इसलिए अधिक है कि युग चेतना को उभारने और नवयुग का सृजन करने में निरत महाकाल की महाकाली-महाप्रज्ञा के अग्रदूत होने के गौरव का अनुमान किया जा सके।

नित्य उपासना के अतिरिक्त ज्ञानयज्ञ के निमित्त नियमित रूप से समयदान एवं अंशदान निकालते रहने की सदस्यता शर्त देव परिवार के परिजनों के लिए आरंभ से ही निर्धारित की गई है। अपने समय में अग्निहोत्र को प्रतीक और ज्ञानयज्ञ को युग धर्म के रूप में मान्यता मिली थी। कभी सब लोग देवमानव थे और सभी ज्ञान सम्पन्न, इसलिए ज्ञानयज्ञ को उतना महत्त्व नहीं दिया गया, जितना कि वह महत्त्वपूर्ण है। आज इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इन दिनों चारों ओर अज्ञानांधकार की घोर तमिस्रा ने सर्वत्र अपना साम्राज्य जमा लिया है। इस स्थिति में ज्ञानयज्ञ की लाल मशाल जलानी पड़ेगी और उसी को युग यज्ञ की मान्यता देनी पड़ेगी।

-अखण्ड ज्योति, अक्टूबर १९८०, पृष्ठ ४८

६. प्रज्ञा परिजन अपना स्वरूप समझें। उनके भीतर दूसरों की तुलना में कहीं अधिक सुसंस्कारिता, आध्यात्मिकता की ऊर्जा विद्यमान है। इस ऊर्जा के सदुपयोग का ठीक यही मौसम है। समय चूक जाने पर पछताना ही शेष रह जाता है। गाड़ी चूक जाने पर यात्री पछताते और

दूसरी गाड़ी के लिए लम्बी प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। जो गाड़ी इन दिनों प्लेटफार्म पर है, वह चली गई तो फिर दूसरी आने के लिए कितनी लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी? और तब तक कौन सौभाग्यशाली अपनी वर्तमान स्थिति बनाए रहेगा? इस सम्बन्ध में कुछ कह सकना कठिन है।

इन पंक्तियों में सामयिक उद्बोधन इतना ही है कि प्रज्ञा परिजन अपनी विशिष्ट उत्कृष्टता पर बार-बार विचार करें, अपना स्वरूप लक्ष्य समझें और युग धर्म की चुनौती स्वीकार करने में आनाकानी न करें। हनुमान और बुद्ध की तरह उनमें बीजांकुर मौजूद हैं मात्र इन्हें उभरने का अवसर मिलने भर की कमी है। इसके लिए ठीक यही समय है। आत्मकल्याण और विश्वकल्याण का दुहरा सुयोग सामने है। मात्र इतना भर करना शेष है कि अपने को, समय को पहचाना जाए और तद्नुरूप दिशाधारा निर्धारित करने में प्रमाद न बरता जाए।

-अखण्ड ज्योति, जून १९८२, पृष्ठ ४

७. तीन स्तर की जाग्रत् आत्माओं का संगठन—प्रज्ञा परिवार में तीन स्तर की जाग्रत् आत्माओं का एकत्रीकरण हुआ है। वातावरण में प्रभाव प्रेरणा भर सकने की दृष्टि से उपयुक्त व्यक्तियों को 'प्रज्ञापुंज' कहा जायेगा। नव सृजन के अग्रदूत युग शिल्पी, जो परिवर्तन के महान निर्णय को अपने में उतारने और दूसरों में प्रवेश कराने के लिए प्रचण्ड पराक्रम करेंगे, उन्हें 'प्रज्ञापुत्र' कहा गया है। तीसरे 'प्रज्ञा परिजन' जो जन संपर्क और लोक सेवा के क्षेत्रों में भी अपनी विवशताओं के कारण कुछ अधिक न कर सकेंगे, किन्तु आत्मनिर्माण और परिवार निर्माण की दृष्टि से कुछ उठा भी न रखेंगे। इन दोनों में से प्रज्ञा पून्जों को विशिष्ट, प्रज्ञा पुत्रों को वरिष्ठ और प्रज्ञा परिजनों को कनिष्ठ कहकर संबोधित किया जाता है। इन्हें मूर्धन्य, प्रखर और पराक्रमी भी कहा जा सकता है।

-अखण्ड ज्योति, मई १९८२, पृष्ठ-५५

८. दायित्व निभाएँ— ठोस काम वह किया जाना चाहिए जिसे करने का दायित्व महाकाल ने वरिष्ठ प्रज्ञापुत्रों के कंधों पर सौंपा है। वह कार्य एक ही है—जनमानस में महाप्रज्ञा का आलोक भर देना। इसके

लिए किस स्थिति में किन्हें क्या करना चाहिए, इसका उल्लेख इन पंक्तियों में होता रहा है। उस पर एक बार फिर दृष्टिपात किया जा सकता है कि जो सौंपा गया था वह बन पड़ा या नहीं। बन पड़ा तो इतना कम तो नहीं है जो तपती धरती को मूसलाधार जल बरसने वाले महामेघ की गरिमा से कम पड़े। समय की माँग बड़ी है उसके लिए उथली पूजा से काम नहीं चल सकता। जलते तवे पर पानी की कुछ बूँदें पड़ने से क्या काम चलता है। इसके लिए इन दिनों समर्थों का ऐसा पुरुषार्थ होना चाहिए, जो उलटे को उलटकर सीधा कर सके।

इसके लिए प्रत्येक वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र सर्वथा समर्थ है। यदि परिस्थितियाँ बाधक हैं तो उन्हें ठोकर मारकर रास्ता रोकने से हटाया जा सकता है। स्रष्टा का राजकुमार मनुष्य केवल इसलिए दुर्बल पड़ता है कि उसे लोभ, मोह और अहंकार की बेड़ियाँ बेतरह जकड़कर असहाय बना देती हैं। यदि औसत भारतीय स्तर का निर्वाह अपनाया जाए, परिवार को छोटा, सभ्य, सुसंस्कृत, स्वावलम्बी रखा जा सके, तो युग धर्म के उच्चस्तरीय निर्वाह की सुविधा हर किसी को सहज ही मिल सकती है। संकीर्ण स्वार्थपरता और अहंकारी साज-सज्जा जुटाने में तनिक कटौती की जा सके, तो हर विचारशील को इतना अवकाश मिल सकता है, जिसमें वह आत्मकल्याण और युग निर्माण की महती आवश्यकताओं को पूरा कर सके। प्रकारांतर से यही कोयले के बहुमूल्य हीरा बनाने वाला कायाकल्प है। इसे स्वेच्छापूर्वक किया जा सकता है।

सहयोग की कमी हो तो सत्पात्र की सुगंध सूँघकर खिले पुष्प पर मँडराने वाले भ्रमरों की तरह समूचा देव परिकर दौड़ पड़ता है। गुरुदेव ने मात्र अपनी पात्रता बढ़ाने में अथक प्रयास किए है और वह पाया है जो सच्चे अध्यात्म का सच्चा अवलम्बन करने पर मिलना चाहिए। इसी के अनुकरण की आवश्यकता है। सबके लिए एक ही संदेश है। यदि किसी की प्रज्ञा अभियान में, उसके सूत्र-संचालक में वास्तविक श्रद्धा हो तो उसका बखान करके नहीं, वरन् अपनी ऐसी श्रद्धांजलि प्रस्तुत करनी चाहिए जिसकी इस विनाश के ज्वालामुखी पर बैठे संसार को

नितांत आवश्यकता है। ऐसी अनिवार्य आवश्यकता है, इतनी अनिवार्य कि उसे एक क्षण के लिए भी टाला नहीं जा सकता।

-अखण्ड ज्योति, जुलाई १९८५, पृष्ठ -६४

९. व्यामोह से उबरें- वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र अपने को देव मानव समझें और अनुभव करें कि यह जन्म उन्हें सम्पदा एवं विलासिता के व्यामोह में डूबे रहने के लिए नहीं मिला है। नियति का निर्धारण यह है कि वे युग की समस्याओं को सुलझाने के लिए अपने आपको भीम, अर्जुन समझें, अंगद, हनुमान मानें और वह करें, जो नल-नील द्वारा असंभव को संभव करके दिखा दिया गया था।

प्रज्ञापुत्रों को इस आपत्तिकाल में लालसा, लिप्सा, तृष्णा, वासना और अहंता की महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी करने की छूट नहीं है। उन्हें दूसरा प्रयोजन देकर भेजा गया है, उसी को तत्परतापूर्वक करना है, सफलता-असफलता का, लाभ-हानि का विचार किए बिना, क्योंकि महाभारत विजय की तरह पाण्डवों की जीत निश्चित है। इससे पीछे हटकर अपयश ही कमाया जा सकता है, अपना लोक-परलोक ही बिगाड़ा जा सकता है। अच्छा हो कि ऐसा अवसर न आए। अच्छा हो कि यह सुनने के लिए, यह देखने के लिए कान व नेत्र, सक्रिय न रहें कि जिनके ऊपर आदर्शवादिता और उत्कृष्टता को जीवन्त रखने का दायित्त्व था, वे परीक्षा की घड़ी आने पर खोटे सिक्के की तरह काले पड़ गए और कूड़े के ढेर में छिप गए।

प्रज्ञा परिजनों को भी इतना समय उसी प्रकार नवसृजन के लिए उत्सर्ग करना चाहिए, जिस प्रकार कि बुद्ध के परिव्राजकों और गाँधी के सत्याग्रहियों ने बिना लोभ-लालच की ओर मन डुलाए कष्ट के दिन हँसते हुए बिताए। क्या करना होगा? इसके लिए अनेक बार बताया जा चुका है कि इस अवधि को गृहस्थ ब्राह्मणों और विरक्त संतों की तरह लोक मानस के परिष्कार में, घर-घर अलख जगाने में, दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन की विचारक्रांति में और सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के पुण्य-परमार्थ में नियोजित किया जा सकता है।

प्रश्न अनुदान-योगदान का है। जिसने इसे स्वीकार कर लिया, उसके लिए समयदान और अंशदान कोई समस्या नहीं। उसे तो सुदामा के तंदुलों और शबरी के बेरों की तरह कोई भी प्रस्तुत कर सकता है। शरीर से बालू चिपटाकर समुद्र पाटने का दुस्साहस करने वाली गिलहरी से अधिक गई-गुजरी स्थिति में हम में से कोई भी नहीं है। कृपणता तो पापी मन में घुसी रहती है। वही चित्र-विचित्र बहाने गढ़ती और अस्वस्थता, असमर्थता की आड़ ढूँढ़ती है।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९८६, पृष्ठ ५४

१०. सर्वप्रथम आगे आने वाले युग सृजेताओं को व्रतधारी प्रज्ञापुत्र कहा जाएगा। वे उपासना, साधना, आराधना के आधार पर आत्म परिष्कार करेंगे। धार को पैनी करेंगे और इतनी अंत: क्षमता अर्जित करेंगे जिसके आधार पर उनसे कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करते बन पड़ें।

उपासना अर्थात् दिव्य सत्ता के लिए बैठना, उसके साथ गुँथ जाना, आग-ईंधन की तरह, सूर्यार्घ्य के समय अर्पित किए गए जल की तरह। कर्मकांड के रूप में गायत्री जैसे मंत्र का अर्थ सहित ध्यान एवं जप और उदीयमान सूर्य का ध्यान किया जा सकता है। यह नियमित होना चाहिए। उपासना से आत्मबल बढ़ता है, प्राण ऊर्जा का रोम-रोम में संचार होता है। इस कृत्य को दैनिक जीवन में किसी न किसी प्रकार गुँथा ही रखना चाहिए।

साधना का पूरा नाम है-जीवन साधना, जीवन को सुव्यवस्थित बनाना। जीवन सम्पदा को आत्म-परिष्कार और लोकमंगल के पुण्य परमार्थ के साथ जोड़कर, उसे सब प्रकार कृतकृत्य बनाना। इसके लिए आत्मनिरीक्षण, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्मविकास जैसी चेष्टाएँ करनी पड़ती हैं। इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम, विचार संयम अपनाना होता है। सादा जीवन उच्च विचार का मन्त्र हृदयंगम किया जाए। औसत नागरिक स्तर का निर्वाह पाकर संतुष्ट रहा जाए। अपने परिवार के सदस्यों को स्वावलम्बी और सुसंस्कारी बनाना पर्याप्त माना जाए। उनके लिए उत्तराधिकार में बड़ी सम्पदा छोड़ मरने की ललक न

संजोयी जाए। यही है प्रामाणिकता, प्रखरता और प्रतिभा अर्जित करने का राजमार्ग।

आराधना का अर्थ है- विराट् ब्रह्म की, विशाल विश्व की, विश्वमानव की सेवा साधना में समुचित उत्साह और तत्परता रखना। इसी परमार्थ परायणता को ईश्वर की आराधना कहते हैं। यही वह पूजा है जिससे आत्मसंतोष, लोकसम्मान एवं देवी अनुग्रह के तीनों लाभ प्राप्त होते हैं। स्वार्थ और परमार्थ की समन्वित सिद्धि होती है। लोक परलोक दोनों बनते हैं।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९८८, पृष्ठ ६१, ६२

११. लोकमानस का परिष्कार सबसे बड़ा परमार्थ—इन दिनों सबसे बड़ा परमार्थ लोक मानस का परिष्कार ही है। इस क्षेत्र में घुसी विकृतियों के कारण ही दरिद्रता, रुग्णता, आपदा जैसी पिछड़ेपन की जन्मदात्री हीनताएँ मनुष्य के सिर पर चढ़ती हैं। आज की समस्त समस्याएँ आर्थिक संकट के कारण ही उत्पन्न हुई हैं। उन सबका एक ही समाधान है जनमानस का परिष्कार, सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन। इन्ही पुण्य प्रयोजनों को प्रमुखता देनी चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९८८, पृष्ठ ६२

मानवता के प्यार अकेले हमें ही हो सो बात नहीं। इस गये गुजरे जमाने में भी ऐसी आत्माएँ विद्यमान हैं, जो वासना-तृष्णा की गंदी कीचड़ में ही सड़ने मरने के लिए नहीं जन्मीं, वरन् कुछ विशेष जीवन लक्ष्य उनके सामने है। समय की चुनौती को ऐसे ही साथी सहचरों को लेकर कुछ सोचने और करने के लिए साहस किया है। -पूज्य गुरुदेव

९. महाकाल की चेतावनी

१. चेतें, चूक न करें—नया युग तेजी से बढ़ता चला आ रहा है। उसे कोई रोक न सकेगा। प्राचीनकाल की महान परम्पराओं को अब पुनः प्रतिष्ठित किया जाना है और मध्यकालीन अंधकार युग की दुष्ट विषमताओं का तिरोधान होना है। महाकाल उसके लिए आवश्यक व्यवस्था बना रहे हैं और तदनुकूल आधार उत्पन्न कर रहे हैं। युग का परिवर्तन अवश्यंभावी है। हमारा छोटा-सा जीवन इसी की घोषणा करने, सूचना देने के लिए है। परिस्थिति के अनुरूप जो समय रहते बदल सकेंगे वे संतोष और सम्मान प्राप्त करेंगे और जो बदलेंगे नहीं, मूढ़ता के लिए दुराग्रह करेंगे वे बुरी तरह कुचले जाएँगे। उनके हाथ अपयश, असंतोष एवं पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ न लगेगा।

-अखण्ड ज्योति, जुलाई १९६९, पृष्ठ ६५

२. व्यक्ति के नाम हमारा उद्बोधन सदा से यही रहा है कि वह मात्र शरीर ही नहीं, आत्मा भी है। केवल परिवार तक की उसकी जिम्मेदारी सीमित नहीं, वरन समाज तक व्यापक है। केवल इन्द्रियाँ ही नहीं, अंतःकरण को भी तृप्त किया जाए। केवल भौतिक जीवन को ही सब कुछ न मान लिया जाए, आत्मिक जीवन की महत्ता एवं आवश्यकता को भी समझा जाए।

कह नहीं सकते, हमारे उद्बोधन का किस प्रकार कितना प्रभाव पड़ा। पर यदि पड़ा होगा, तो उसे सौ बार यह सोचने को विवश होना पड़ा होगा कि उसकी वर्तमान गतिविधियाँ न तो संतोषजनक हैं, न पर्याप्त। उसे कुछ कदम आगे बढ़कर कुछ ऐसा करना चाहिए, जो अधिक महत्त्वपूर्ण हो, अधिक आत्मशांति और आंतरिक संतोष दे सके।

ऐसे कदम उठा सकना हर किसी के लिए संभव है। केवल

आत्मबल का अभाव ही ऐसे पारमार्थिक कदम उठाने से रोकता है, जो सुरदुर्लभ मानव जीवन के अमूल्य अवसर को सार्थक बना सके। तात्त्विक दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि हम व्यर्थ और अनर्थ कहे जा सकने वाले क्रिया-कलापों में लगे रहे और कीमती जीवन के हीरे-मोतियों से तोले जा सकने योग्य बहुमूल्य क्षण यों ही गँवा दिए। जिन उपार्जनों को तुच्छ-सा शरीर लेकर तुच्छ जीवधारी पूरा कर लेते हैं, उन्हीं के इर्द-गिर्द मनुष्य का जीवन भी चक्कर काटे और अंतत: अपने को बिना किसी उपलब्धि के यों ही समाप्त कर ले, तो इसे एक दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना ही कहा जाएगा।

हमने सदा सचेत किया है कि परिजनों का जीवनक्रम इतना घटिया न बीतना चाहिए। पेट और प्रजनन कोई बड़े आदर्श नहीं। प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि कीट-पतंग और पशु-पक्षी भी इन दो आवश्यकताओं को पूरा कर लेते हैं। फिर मनुष्य जैसे बुद्धिजीवी के लिए उनकी पूर्ति क्या कठिन हो सकती है? इतना ही उद्देश्य अपना है तो उसे पशु जीवन कहा जाएगा। मानव जीवन की विशेषता तो आदर्शवादिता और उत्कृष्टता पर निर्भर है। यदि उस दिशा में कुछ न किया जा सका तो निस्संकोच यही कहा जाएगा कि जीवन व्यर्थ चला गया।

जीवन बहुमूल्य है, उसे निरर्थक प्रयोजनों के लिए खर्च कर डालना एक ऐसी बड़ी भूल है, जिसके लिए हजारों वर्षों प्रायश्चित करना होगा। हर दिन इसलिए अश्रुपात करना होगा कि नर शरीर का एक बहुमूल्य अवसर मिला था, उसे हमने आत्मकल्याण के लिए खरच न कर उन्हीं निरर्थकताओं में लगा दिया, जिन्हें निम्न योनि वाले जीव भी बड़ी आसानी से पूरा कर लेते हैं। अगले ही दिनों इस पश्चात्ताप की आग में से अपने को गुजरना पड़ेगा, इस वस्तुस्थिति की आगाही हमने निरन्तर दी है। पता नहीं किस पर कितना उस चेतावनी का असर पड़ा और कितनों ने इसे निरर्थक बकवास कह मुख फेर लिया।

-अखण्ड ज्योति, नवम्बर १९६९, पृष्ठ ६१

३. दो में एक रास्ता चुनें—मूढ़तावादी मोहग्रस्त असुर वर्ग और लोकमंगल की भूमिका सम्पादित करने में संलग्न देव-वर्ग इन दोनों को ही अगले दिनों अपनी रीति-नीति की श्रेष्ठता-निकृष्टता प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा। दोनों गतिविधियों के सत्परिणाम और दुष्परिणाम उपस्थित होंगे और उनको देख-समझकर भावी पीढ़ी को यह निश्चय करने का अवसर मिलेगा कि उपरोक्त दोनों पद्धतियों में से कौन उपयुक्त और कौन अनुपयुक्त है। इनमें से किसे ग्रहण किया जाए और किसे त्यागा जाए?

अगले दिनों हमें इनमें से किसी एक वर्ग में सम्मिलित होना होगा, बीच में नहीं रहा जा सकता। महाकाल के विधान में प्रतिरोध प्रस्तुत करने वाले मूढ़तावादी लोगों में सम्मिलित रहना हो तो खुशी-खुशी वैसा करें और करालकाल-दंड के प्रहार सहने को तैयार रहें। यदि यह अभीष्ट न हो तो ईश्वरीय प्रयोजन की पूर्ति में सहायक बनकर चलना ही उचित है। तब हमें अपनी गतिविधियाँ अभी से बदलनी होंगी और उस पुण्य प्रक्रिया को अपनाना होगा जिसमें आत्मकल्याण और विश्वकल्याण दोनों का ही समान रूप से समन्वय हो।

-अखण्ड ज्योति, दिसम्बर १९६७, पृष्ठ ४

४. लोभ, मोह के बंधन में न फँसे—अब किसी को भी धन का लालच नहीं करना चाहिए और बेटे-पोतों को दौलत छोड़ मरने की विडम्बना में नहीं उलझना चाहिए। यह दोनों ही प्रयत्न निरर्थक सिद्ध होंगे। अगला जमाना जिस तेजी से बदल रहा है, उससे इन दोनों विडम्बनाओं से कोई लाभान्वित न हो सकेगा, वरन् लोभ और मोह की इस दुष्प्रवृत्ति के कारण सर्वत्र धिक्कारा भर जाएगा। दौलत छिन जाने का दु:ख और पश्चात्ताप सताएगा, सो अलग। इसलिए यह परामर्श हर दृष्टि से सही ही सिद्ध होगा कि मानव जीवन जैसी महान उपलब्धि का उतना ही अंश खर्च करना चाहिए, जितना निर्वाह के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हो। इस मान्यता को हृदयंगम किए बिना आज की युग पुकार के लिए किसी के लिए कुछ ठोस कार्य कर सकना संभव न

होगा। एक ओर से दिशा मुड़े बिना दूसरी दिशा में चल सकना सम्भव ही न होगा।

लोभ-मोह में जो डूबा हुआ होगा, उसे लोकमंगल के लिए न समय मिलेगा न सुविधा। सो परमार्थ पक्ष पर चलने वालों को सबसे प्रथम अपने इन दो शत्रुओं को--रावण, कुम्भकरणों को, कंस, दुर्योधनों को निरस्त करना होगा। यह दो आंतरिक शत्रु ही जीवन विभूति को नष्ट करने के सबसे बड़े कारण हैं। सो इनसे निपटने का अंतिम महाभारत हमें सबसे पहले आरंभ करना चाहिए। देश के सामान्य नागरिक जैसे स्तर का सादगी और मितव्ययितापूर्ण जीवन स्तर बनाकर स्वल्प व्यय में गुजारे की व्यवस्था बनानी चाहिए और परिवार को स्वावलम्बी बनाने की योग्यता उत्पन्न करने और हाथ-पाँव से कमाने में समर्थ बनाकर उन्हें अपना वजन आप उठा सकने की सड़क पर चला देना चाहिए। बेटे-पोतों के लिए अपनी कमाई की दौलत छोड़कर मरना, भारत की असंख्य कुरीतियों और दुष्ट परम्पराओं में से एक है।

संसार में अन्यत्र ऐसा नहीं होता। लोग अपनी बची हुई कमाई को जहाँ उचित समझते हैं, वसीयत कर जाते हैं। इसमें न लड़कों को शिकायत होती है न बाप को, कंजूस कृपण की गालियाँ पड़ती हैं, सो अलग। इसलिए हम लोगों में से जो विचारशील हैं, उन्हें तो ऐसा साहस इकट्ठा करना चाहिए। जिनके पास इस प्रकार का ब्रह्मवर्चस न होगा, वे माला सटकाकर, पूजा-पत्री उलट-उलट कर मिथ्या आत्मप्रवंचना भले ही करते रहें, वस्तुतः परमार्थ पथ पर एक कदम भी न बढ़ सकेंगे। समय, श्रम, मन और धन का अधिकाधिक समर्पण विश्वमानव की सेवा कर सकने की स्थिति तभी बनेगी जब लोभ और मोह के खरदूषण कुछ अवसर मिलने दें। जिनके पास गुजारे भर के लिए पैतृक संपत्ति मौजूद है, उनके लिए यही उचित है कि आगे के लिए उपार्जन बिलकुल बंद कर दें और सारा समय परमार्थ के लिए लगाएँ। प्रयत्न यह भी होना चाहिए कि सुयोग्य स्त्री-पुरुषों में से एक कमाए, घर खर्च चलाए और दूसरे को लोकमंगल में प्रवृत्त होने की छूट दे दे। संयुक्त परिवारों में से

एक व्यक्ति विश्व सेवा के लिए निकाला जाए और उसका खर्च परिवार वहन करे। जिनके पास संग्रहीत पूँजी नहीं है। रोज कमाते, रोज खाते हैं उन्हें भी परिवार का एक अतिरिक्त सदस्य, बेटा 'लोकमंगल' को मान लेना चाहिए और उसके लिए जितना श्रम, समय और धन अन्य परिवारियों पर खर्च होता है, उतना तो करना ही चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, जून १९७१, पृष्ठ-५६, ५७

५. धर्मतंत्र को परिष्कृत करना होगा—उपाय आज खोजा जाए या हजार वर्ष बाद, प्रयत्न आज किया जाए या हजार वर्ष बाद इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। व्यक्ति और समाज के सम्मुख खड़ी हुई अनेकानेक समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं का हल निकलेगा, तभी जब मानवी अंतःकरण में उत्कृष्ट आस्थाओं के बीजारोपण तथा परिपोषण का प्रयास युद्धस्तरीय तत्परता के साथ आरंभ होगा। इसके लिए न राजनीति से काम चलेगा न अर्थ तंत्र के बलबूते कुछ ठीक काम हो सकेगा। उसे मात्र धर्म तंत्र ही कर सकता है।

आज धर्म का कलेवर उपहासास्पद और विद्रूप हो गया है, यह ठीक है, किन्तु यह भी ठीक है कि इसी को परिष्कृत, प्रखर एवं सुनियोजित बनाने पर भावनात्मक नव निर्माण का महान कार्य सम्पन्न हो सकेगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय है नहीं। सम्पदा को अर्थ तन्त्र, शरीर को चिकित्सा तन्त्र, मस्तिष्क को शिक्षा तन्त्र, व्यवस्था को शासन तन्त्र प्रभावित कर सकता है, परन्तु अंतःकरण को प्रभावित करने की क्षमता धर्मतन्त्र के अतिरिक्त और किसी में भी है नहीं। टूटे को सुधारा जाए या उसे नए सिरे से ढाला जाए यह तकनीकी प्रश्न है। मूल तथ्य जहाँ का तहाँ रहता है कि विपत्तियों से छुटकारा पाने और उज्ज्वल भविष्य को मूर्तिमान करने में धर्मतन्त्र की सहायता लिए बिना काम किसी भी प्रकार नहीं चल सकता।

बहस शब्द की नहीं, विवेचना तथ्य की है। किसी को धर्म-अध्यात्म से चिढ़ हो, तो उनको संतुष्ट कराने वाले शब्द दूसरे शब्दकोष में ढूँढ़ निकाले जा सकते हैं। पर करना यह होगा कि व्यक्ति एवं समाज

की अनेकानेक दिशाधाराओं को प्रभावित करने वाले अंत:करण को उत्कृष्टता की सम्पदा से सुसम्पन्न बनाया जाए, मानवी संस्कृति के अवमूल्यन का अन्त किया जाए, श्रद्धा और विवेक के समन्वय को, दृष्टिकोण को आधारभूत तथ्य बनाया जाए।

प्रज्ञावतार का प्रयोजन यही है। उसका कार्यक्षेत्र जन-जन की आस्थाओं को अध्यात्म के आधार पर और आदतों को धर्म धारणा के सहारे परिष्कृत करना है। उत्कृष्टता के प्रति श्रद्धा संवर्द्धन उसका प्रधान कार्यक्रम है। यह गतिचक्र जितनी तेजी से परिभ्रमण करेगा नवयुग के दिव्य दर्शन की पुण्य वेला उतनी ही समीप आती चली जाएगी।

-अखण्ड ज्योति, अगस्त १९७९, पृष्ठ ३१

६. प्रत्यावर्तन ही युग परिवर्तन है—विगलित का अभिनव के रूप में प्रत्यावर्तन ही युग परिवर्तन है। व्यष्टि में दुष्टता और समष्टि में भ्रष्टता के तत्त्व बढ़ गए हैं। औचित्य का स्थान औद्धत्य हथियाता चला जा रहा है। समूहगत सहकारिता कुंठित हो गई है और संकीर्ण स्वार्थपरता का बोल-बाला है। प्रवृत्तियाँ सृजन का बहाना भर करती हैं। व्यवहार में ध्वंस ही उनकी दिशाधारा है। ऐसी दशा में बड़े परिवर्तन से कम में काम नहीं चल सकता। प्रवाह को उलटना बड़ा काम है, विशेषतया निकृष्टता की सड़क पर जब आतुर घुड़दौड़ मच रही हो तो पवमानों की लगाम पकड़ना और उन्हें रुकने ही नहीं, उलटने के लिए विवश करना, एक बहुत बड़ा काम है; साथ ही अति कठिन भी, श्रम-साध्य और साधन-साध्य भी।

क्रांतियों की बात करना सरल है, योजनाएँ बनने में भी देर नहीं लगती, किन्तु उन्हें कर दिखाना और सफल बनाना दुस्तर होता है। श्रेय हलचलों को नहीं, सफल प्रतिफल को मिलता है। इस दृष्टि से क्षेत्रीय और सामयिक क्रांतियाँ भी आंशिक रूप से ही सफल हो पाती हैं। फिर चार सौ करोड़ मनुष्यों की मन:स्थिति और २५ हजार मील परिधि के भूमण्डल की परिस्थितियों को बदल देना कितना कठिन कार्य है,

इसकी कल्पना करने भर से सामान्य बुद्धि उतनी ही हतप्रभ हो जाती है जितनी कि विशिष्ट प्रज्ञा, ब्रह्माण्ड के विस्तार और उसके अंतराल में चलती हुई हलचलों को देखकर। फिर भी काम तो काम ही है। जो होना है वह तो होगा ही। दूसरा विकल्प नहीं। यह जीवन और मरण का चौराहा है। जहाँ आज की दुनियाँ आ खड़ी हुई है। वहाँ से आगे बढ़ने के लिए दो ही मार्ग हैं एक सर्वनाश, दूसरा नव सृजन। चुनाव इन्हीं दोनों में से एक का होना है। नियति को इन्हीं दोनों में से एक का चयन करना है।

-अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९७९, पृष्ठ ५२

७. पेट और प्रजनन तक सीमित न रहें—प्रत्येक परिजन को पेट और प्रजनन की पशु प्रक्रिया से ऊँचे उठकर उन्हें दिव्य जीवन की भूमिका संपादित करने के लिए कुछ सक्रिय कदम बढ़ाने चाहिए। मात्र सोचते विचारते रहा जाए और कुछ किया न जाए तो काम न चलेगा। हममें से प्रत्येक को अधिक ऊँचा दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और कर्तृत्व में ऐसा हेर-फेर करना चाहिए, जिसके आधार में परमार्थ प्रयोजनों को अधिकाधिक स्थान मिल सके। उपलब्ध विभूतियों और सम्पदाओं को अपने शरीर और अपने परिवार के लिए सीमित नहीं कर लेना चाहिए, वरन् उनका एक महत्त्वपूर्ण अंश लोकमंगल के लिए नियोजित करना चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, मई १९७२, पृष्ठ ४३

८. राजतन्त्र और धर्मतन्त्र परस्पर पूरक—यह ध्यान रखने की बात है कि संसार की दो ही प्रमुख शक्तियाँ हैं-एक राजतंत्र दूसरी धर्मतंत्र। राजसत्ता में भौतिक परिस्थितियों को प्रभावित करने की क्षमता है और धर्मसत्ता में अंतश्चेतना को। दोनों को कदम से कदम मिलाकर एक दूसरे की पूरक होकर रहना होगा। यह धोखा है कि राजनीति का धर्म से कोई संबंध नहीं। सच्ची बात यह है कि एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। कर्त्तव्यनिष्ठ और सदाचारी नागरिकों के बिना कोई राज्य समर्थ, समुन्नत नहीं हो सकता और राजसत्ता यदि धर्मसत्ता को उखाड़ने की ठान ले, तो फिर उसके लिए भी कुछ अधिक कर सकना कठिन है।

रामराज्य तभी सफल रह सका जब उस पर वशिष्ठ का नियंत्रण था। चन्द्रगुप्त की शासन गरिमा का श्रेय चाणक्य के मार्गदर्शन को ही दिया जा सकता है। प्राचीनकाल की यह परम्परा आगे भी चलेगी। धर्मसत्ता का स्थान पहला है; इसलिए राजसत्ता को उसका समर्थक और सहायक ही बनकर रहना चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, मई १९७२, पृष्ठ ३६

९. विवेकपूर्ण तालमेल जरूरी—सभी मनुष्य हमारे जैसे विचार के नहीं हो सकते हैं और न हर परिस्थिति हमें प्रिय लगने वाली हो सकती है। ऐसी दशा में सहिष्णुता ही अपनानी पड़ती है। यदि तालमेल न बैठता हो तो उन परिस्थितियों से हट जाने या हटा देने का रास्ता अपनाया जा सकता है, पर निरन्तर टकराव का कोई प्रयोजन नहीं। सुधार यदि अपनी मर्जी जैसा नहीं हो सकता, तो इसे दुर्भाग्य मान बैठना और खीजने या असंतुलित होने लगना व्यर्थ है।

-अखण्ड ज्योति, फरवरी १९७४, पृष्ठ ३४

१०. हमें व्यक्तियों अथवा परिस्थितियों की विपरीतता देखकर आवेशग्रस्त नहीं होना चाहिए। क्रोध में आना या हताश हो बैठना दोनों ही मनुष्य की आन्तरिक कमजोरी की निशानी हैं। परिस्थितियों से धैर्य और औचित्य के आधार पर निपटा जाना चाहिए और सफलता को अनिवार्य न मानकर अपने प्रयास एवं कर्त्तव्य की सीमा में सन्तोष करना चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, फरवरी १९७४, पृष्ठ ३४

११. भगवान् की इच्छा युग-परिवर्तन की व्यवस्था बना रही है। इसमें सहायक बनना ही वर्तमान युग में जीवित प्रबुद्ध आत्माओं के लिए सबसे बड़ी दूरदर्शिता है। अगले दिनों में पूँजी नामक वस्तु किसी व्यक्ति के पास नहीं रहने वाली है। धन एवं संपत्ति का स्वामित्व सरकार एवं समाज का होना सुनिश्चित है। हर व्यक्ति अपनी रोटी मेहनत करके कमाएगा और खाएगा। कोई चाहे तो इसे एक सुनिश्चित भविष्यवाणी की तरह नोट कर सकता है। अगले दिन इस तथ्य को अक्षरश: सत्य

सिद्ध करेंगे। इसलिए वर्तमान युग के विचारशील लोगों से हमारा आग्रहपूर्वक निवेदन है कि वे पूँजी बढ़ाने, बेटे-पोतों के लिए जायदाद इकट्ठी करने के गोरख-धंधे में न उलझें। राजा और जमींदारों को मिटते हमने अपनी आँखों देख लिया, अब इन्हीं आँखों को व्यक्तिगत पूँजी को सार्वजनिक घोषित किया जाना देखने के लिए तैयार रहना चाहिए।

-अखण्ड ज्योति, मार्च १९६७, पृष्ठ ३४, ३५

१२. सच्चे साथी सिद्ध हों—हमारे चले जाने के बाद युग परिवर्तन का दृश्य और स्थूल क्रियाकलाप जारी रखना हमारे हर प्रेमी, स्वजन, आत्मीय और सहचर का कर्त्तव्य है। जिसके भी मन में हमारे प्रति श्रद्धा, सद्भावना हो, वह उसे भीतर ही दबाकर न रखे। उसे रोने-कलपने तक सीमाबद्ध न करे। वरन् उस संवेदना को मिशन को अधिक सहयोग देने में बदल दे। मरने के बाद पितरों का श्राद्ध, तर्पण उसके वंशज अधिक भावनापूर्वक करते हैं। वियोग की व्यथा और श्रद्धा की प्रखरता का उभार जिस रचनात्मक मार्ग से प्रकट हो सके उसे श्राद्ध कहते हैं। आशा करनी चाहिए कि हमारे प्रति जहाँ भी श्रद्धा होगी श्राद्ध के रूप में परिणत और विकसित होकर रहेगी।

मिशन अभी **'ज्ञानयज्ञ'** की प्रथम कक्षा में चल रहा है। इसे और अधिक व्यापक बनाया जा सके। ज्ञानघट, झोला.पुस्तकालय हमारे लिए पिण्डदान और तर्पण के श्रेष्ठतम आधार माने जा सकते हैं। हमारी आत्मा जहाँ कहीं भी स्वजनों को यह धर्मकृत्य करते देखेगी-संतोष और आनंद अनुभव करेगी। इस क्रिया-कलाप में संलग्न भावनाशील परिजनों को हमारा स्नेह, आशीर्वाद, संरक्षण, सहयोग और सान्निध्य अपने चारों ओर बिखरा दिखाई देगा। सुविकसित पुष्पों पर उड़ने वाले भौंरों की तरह ऐसे दूरदर्शी और सेवाभावी परिजनों के इर्द-गिर्द हम मँडराते ही रहेंगे और उन्हें अपना भावभरा गुंजन अति उत्साहपूर्वक निरंतर सुनाते रहेंगे।

मिशन के अगले कदम रचनात्मक और संघर्षात्मक कार्यक्रमों से भरे हुए हैं। अवांछनीयता के विरुद्ध एक अति उग्र और अति व्यापक

संघर्ष छेड़ना पड़ेगा। विचारों को विचारों से काटने की एक घमासान लड़ाई अगले दिनों होकर रहेगी। अनुचित और अन्याय का उन्मूलन किया जाना है इसके लिए घर-घर और गली-गली में जो भावी महाभारत लड़ा जाएगा उसकी रूपरेखा विस्तारपूर्वक बता चुके हैं, यह विश्व का अंतिम युद्ध होगा। इसके बाद युद्ध का वर्तमान वीभत्स स्वरूप सदा के लिए समाप्त हो जाएगा।

अनुचित के उन्मूलन के साथ-साथ सृजन के लिए अनेक रचनात्मक प्रवृत्तियाँ विकसित की जाती हैं। नींव खोदना ही काफी नहीं, महल की दीवार भी तो चुननी पड़ेगी। ध्वंस के साथ सृजन और आपरेशन के साथ मरहम पट्टी और सिलाई, सफाई का प्रबंध अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता है। सो समयानुसार वे कथाएँ भी जल्दी ही सामने आने वाली हैं। ज्ञानयज्ञ की आग में पका-पकाकर इन दिनों उस सृजन के लिए ईंट चूने के भट्टे लगाए जा रहे हैं। इसमें जैसे ही प्रखरता आई कि दूसरे मोर्चे खड़े हुए। अज्ञान, अभाव और अशक्ति के तीनों मोर्चों पर अपनी सेना कमान सँभालेगी।

बौद्धिक क्रांति अकेली नहीं है। उसके साथ-साथ नैतिक क्रांति और सामाजिक क्रांति भी अविछिन्न रूप से संबद्ध हैं। राजनैतिक स्वाधीनता के लिए लड़ा गया संग्राम जितनी जनशक्ति और साधनों से लड़ा गया, अपना मोर्चा बहुत बड़ा, कम से कम तिगुना होने के कारण उसके लिए तिगुनी जनशक्ति, श्रमशक्ति, भावशक्ति और धनशक्ति की आवश्यकता पड़ेगी। ज्ञानयज्ञ के विस्तार से ही यह उपलब्धियाँ हाथ लगेंगी, इसलिए इसी आरंभिक चरण पर इन दिनों अधिक जोर दिया जा रहा है। सीमित इतने तक नहीं रह सकते। हाथ पाँवों में जरा सी गरमी आते ही मंजिल की ओर अधिक तत्परतापूर्वक कदम उठने स्वयं ही शुरू हो जाएँगे और वे तब तक बढ़ते ही रहेंगे जब तक मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का लक्ष्य पूरा नहीं हो जाता।

हम इस सारे चक्रव्यूह का संचालन परदे के पीछे बैठकर करेंगे। हमारा प्रयाण नवनिर्माण के पथ पर चलने वाले किसी सैनिक को

अखरेगा नहीं; क्योंकि अदृश्य रहते हुए भी हम दृश्य व्यक्तियों से अधिक समर्थ बनकर, अधिक साहस और अधिक क्षमता के साथ अधिक योगदान, अधिक मार्गदर्शन कर सकने में समर्थ होंगे। छोड़े हुए काम को अधूरा छोड़कर हम कंधा डालने वाले नहीं हैं। हमारी सत्ता दृश्य रहे या अदृश्य, लोक में रहे या परलोक में, इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। प्रश्न केवल मिशन की प्रगति में योगदान करने का है सो हम किसी भी स्थिति में रहते हुए निरंतर करते रहेंगे। साथी सहचरों को अकेला छोड़कर चल देना हमारे लिए उचित नहीं होगा।

-अखण्ड ज्योति, मार्च १९७१, पृष्ठ ५२

१३. जो घटित होने वाला है उस सफलता के लिए श्रेयाधिकारी भागीदार बनने से दूरदर्शी विज्ञजनों में से किसी को भी चूकना नहीं चाहिए। यह लोभ-मोह के लिए खपने और अहंकार प्रदर्शन के लिए ठाठ-बाट बनाने की बात सोचने और उसी स्तर की धारणा रीति-नीति अपनाये रहने का समय नहीं है। औसत नागरिक स्तर का निर्वाह और परिवार को बढ़ाने की अपेक्षा स्वावलम्बी बनाने का निर्धारण किया जाए, तो वह बुद्धिमता भरा लाभदायक निर्धारण होगा। जिनसे इतना बन पड़ेगा वे देखेंगे कि उनके पास युगसृजन के निमित्त कितना अधिक तन, मन, धन का वैभव समर्पित करने योग्य बच जाता है। जबकि लिप्साओं में ग्रस्त रहने पर व्यस्तता और अभावग्रस्तता की ही शिकायत बनी रहती है।

श्रेय सम्भावना की भागीदारी में सम्मिलित होने का सुयोग्य-सौभाग्य जिन्हें अर्जित करना है, हमारी ही तरह भौतिक जगत् में संयमी-सेवाधर्मी बनना पड़ेगा। सादा जीवन उच्च विचार का मंत्र अपने रोम-रोम में जमाना पड़ेगा। इतना कर सकने वाले ही अगले दिनों की दिव्य भूमिकाएँ, हमारे छोड़े उत्तराधिकार को वहन कर सकेंगें।

-अखण्ड ज्योति, फरवरी १९८७, पृष्ठ ६४

१. अखण्ड ज्योति परिवार के प्रत्येक सदस्य को प्रतिनिधि अथवा उत्तराधिकारी बनाने का खुला आमंत्रण प्रस्तुत किया गया है। प्रश्न

साहस का है। जिनमें हिम्मत हो, वे इस निमंत्रण को स्वीकार कर सकते हैं। कोई भौतिक पदार्थ बाँटे जा रहे होते, तो अगणित याचक आ खड़े होते, पर यहाँ तो लेने का नहीं देने का प्रश्न है। भोग का नहीं, त्याग का प्रश्न है। इसलिए स्वभावत: कोई बिरले ही आगे बढ़ने का साहस करेंगे। फिर भी यह निश्चित है कि यह धरती कभी भी वीर-विहीन नहीं होती। इसमें ऊँचे आदर्शों को अपनाने वाले, ऊँचे स्तर के बड़े दिल वाले व्यक्ति भी रहते ही हैं और उनका अपने परिवार में अभाव नहीं है। थोड़े ही सही पर हैं जरूर। जो हैं उतनों से भी अपना काम चल सकता है। हमारे हाथों में जो मशाल सौंपी गई थी उसे हम हजार-दो हजार हाथों में भी जलती देख सकें तो संतोष की बात ही कही जाएगी।

– अखण्ड ज्योति फरवरी १९६५, पृष्ठ ५१

मनुष्य जिसे प्यार करता है, उसके उत्कर्ष एवं सुख के लिए बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान करने के लिए तैयार रहता है। अपने शरीर, मन, अंतःकरण एवं भौतिक साधनों का अधिकाधिक भाग समाज और संस्कृति की सेवा में लगाने से रुका नहीं जाता। जितना भी कुछ पास दीखता है, उसे अपने प्रिय आदर्शों के लिए लुटा डालने की हूक उठती है कि कोई भी सांसारिक प्रलोभन उसे रोक सकने में समर्थ नही होता।

- पं० श्रीराम शर्मा आचार्य